शहीदों की टोली

शिल्पी मिश्रा

शब्द भारती
इलाहाबाद

प्रकाशक :
शब्द भारती
८४/१ पुराना बैरहना,
इलाहाबाद-३



प्रथम संस्करण : १९९० ई०



मूल्य : रु० ३०.००



मुद्रक :
भार्गव मुद्रण केन्द्र
४/३, बाई का बाग, इलाहाबाद-३

अनुक्रम

□

□□

राजा कुँवरसिंह

आरा (बिहार) जिले के जगदीशपुर नामक एक छोटी-सी रियासत में सन् १७८२ ई० के लगभग राजा कुँवरसिंह का जन्म हुआ था। यह रियासत इनके पूर्वजों को बादशाह शाहजहाँ ने उनकी वीरता और वफादारी से प्रसन्न होकर दी थी और साथ ही 'राजा' की उपाधि भी दी थी। कुँवरसिंह के पिता का नाम राजा शाहबाजासिंह था।

कुँवरसिंह बचपन से ही बहादुर थे। इनका मन पढ़ने की ओर विशेष न लगता था। ये बड़ी ही स्वतन्त्र प्रकृति के थे। लड़ाई, झगड़ा तथा वीरता के कामों में इनकी अभिरुचि थी; इसी कारण इनकी विशेष शिक्षा न हो सकी। राजा कुँवरसिंह को घोड़े पर चढ़ने का, बन्दूक चलाने का और इसी प्रकार की बहादुरी के कामों को करने का शौक था। अपने इन गुणों के कारण ये छोटी ही उम्र में विख्यात हो चले थे और आस-पास के इलाके में अत्यन्त सर्वप्रिय बन चुके थे।

सन् १८५७ के गदर के प्रभाव से बिहार भी न बच सका था। विप्लवकारी उस समय पटना में अपना आतंक बढ़ा रहे थे; नित्य गुप्त सभाएँ हुआ करती थीं; उन सभाओं में वहाँ की पुलिस तक शामिल थी। जब अंग्रेजों को इस बात का पता चला तो उन्होंने सिक्ख सेना पटना की रक्षा के लिए भेज दी।



राजा कुंवरसिंह

पटना ही विप्लवकारियों का केन्द्र समझा जाता था। पटना में कुछ विप्लव हुआ, किन्तु सिक्ख सेना की सहायता से उसे दबा दिया गया। वहाँ का मुख्य नेता पीर अली था। उसको पकड़ कर फाँसी दे दी गई। इसी तरह दरभंगा जिले के विप्लवकारी पुलिस के जमादार वारिसअली को सन्देह कर फाँसी दे दी गई।

विप्लव की आग दावाग्नि की भाँति बड़ी शीघ्रता से फैलती हुई दिखाई दे रही थी। कुंवरसिंह के पास भी इसकी खबर पहुँची तो वे भी व्याकुल हो उठे। वीर कब रण भेरी सुनकर सोता रह सकता है। देश की रक्षा के लिए कुंवरसिंह का दिल उमड़ आया और वे प्राणपण से रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हो गये। पाठकों को सुनकर आश्चर्य होगा कि उस समय कुंवरसिंह की आयु ८० वर्ष की थी। उस अस्सी वर्ष के बूढ़े में बिजली की सी तड़प थी। जिस समय दानापुर की विप्लवकारी सेना जगदीशपुर पहुँची, बूढ़े कुंवरसिंह ने तुरन्त अपने महल से निकल कर हथियार उठा कर इस सेना का नेतृत्व ग्रहण किया। लोगों का कहना है कि बिहार के विप्लवकारियों में राजा कुंवरसिंह का प्रमुख हाथ था और वे उस समय के प्रबल नेता समझे जाते थे। उनकी वीरता को अनेक कहानियाँ अब तक कही और सुनी जाती हैं।

कुंवरसिंह विप्लवकारी सेना के साथ आरा पहुँचे, यहाँ पर इन्होंने सरकारी खजाना लूटा और जेलखाने के कैदियों को रिहा कर दिया। आरा के किले को घेर लिया, जो तीन दिन तक घिरा रहा। चौथे दिन कप्तान डनवर लगभग ४०० चार सौ सिपाही लेकर आरा की रक्षा के लिये चल दिया। आरा के पास एक आम का बाग था; कुंवरसिंह ने अपने कुछ आदमी

आम के पेड़ों में छिपा दिए। रात का समय था। कप्तान डनवर मय अपनी सेना के उस आम के बाग से होकर गुजरे। जिस समय सेना ठीक पेड़ों के नीचे पहुँची, अंधेरे में ऊपर से दनादन गोलियाँ बरसने लगीं। इस तरह से कुछ समय तक गोलियों की घनघोर वर्षा करके सेना के लगभग सभी सिपाहियों का खात्मा कर दिया गया। कहा जाता है कि करीब ५० जिन्दा बचकर लौटे। कप्तान डनवर यहीं पर मारे गए। इसके बाद मेजर आयर एक बड़ी सेना लेकर आए। बीबीगंज के निकट कुँवरसिंह की सेना से मेजर की सेना का मुकाबला हुआ। पहले तो कुँवरसिंह की सेना ने बड़ी वीरता दिखलाई और यह मालूम होने लगा कि मेजर साहब की सेना के पैर उखड़ जायेंगे, किन्तु थोड़े ही समय में युद्ध का रङ्ग बदल गया और कुँवरसिंह को सेना को पीछे हटना पड़ा। आठ दिन के घेरे के बाद आरा नगर तथा किला फिर से अँग्रेजों के हाथ में आ गया। कुँवर सिंह जगदीशपुर की ओर लौट आये। मेजर आयर ने सेना के साथ उनका पीछा किया। कई दिन संग्राम होने के बाद कुँवरसिंह को फिर भी हारना पड़ा। मेजर ने जगदीशपुर के महल पर कब्जा कर लिया।

बूढ़े कुँवरसिंह १२०० बारह सौ सैनिकों के साथ अपने महल की स्त्रियों को साथ लेकर जगदीशपुर से निकल पड़े। उन्होंने आजमगढ़ से पचास मील की दूरी पर अतरौलिया नामक स्थान पर डेरा जमाया। जिस समय अँग्रेजों को यह समाचार मिला, उन्होंने तुरन्त मिल मैंन के अधीन कुछ सेना और दो तोपें हवाले करके कुँवरसिंह के मुकाबले को भेज दिया। अतरौलिया के मैदान में दोनों ओर की सेनाओं का

आमना सामना हुआ। थोड़ी ही देर बाद कुंवरसिंह अपनी सेना सहित पीछे को हटने लगे। अंग्रेजी सेना समझ गई कि कुंवरसिंह हार कर मैदान से भाग गए। जीत की खुशी में मिल मैन ने अपनी सेना को एक आम के बाग में ठहर कर भोजन करने की आज्ञा दे दी। मिल मैन की सेना जब भोजन करने में लगी हुई थी, कुंवरसिंह मय अपनी सेना के उन पर अचानक टूट पड़े। थोड़ी देर के संग्राम के बाद विजय कुंवरसिंह की हुई। मिल मैन के अनेक सिपाही काम आए और बहुतों ने अतरौलिया से भाग कर कौशिला में आश्रय लिया। कुंवरसिंह ने मिल मैन का पीछा किया। मिल मैन मैदान छोड़कर अपनी जान लेकर भागा। इस विजय में कुंवरसिंह के हाथ बहुत सा सामान लगा और तोपें आदि भी पल्ले पड़ीं।

पीछे पता चला कि मिलमैन आजमगढ़ की ओर चले गए। मिलमैन की पराजय का समाचार जब अंग्रेजों को मिला तो उनको बहुत घबराहट पैदा हुई। मिलमैन की सहायता के लिए एक सेना बनारस से और दूसरी गाजीपुर से आजमगढ़ भेजी गई।

इधर कुंवरसिंह को भी सेनाओं के आने की खबर लग गई थी, वे भी सतर्क हो गये। अंग्रेजों की संयुक्त सेना कर्नल डेम्स के नेतृत्व में आगे बढ़ी। आजमगढ़ से कुछ दूर कुंवरसिंह और कर्नल डेम्स में युद्ध हुआ। इसमें भी कुंवरसिंह की विजय हुई। कुंवरसिंह ने आजमगढ़ में प्रवेश किया। आजमगढ़ को विजय कर वे अपनी सेना के एक दल को आजमगढ़ के किले के घेरे के लिए छोड़ कर बनारस की ओर बढ़े। इतिहास लेखक मालेसन का कहना है कि कुंवरसिंह की विजयों और

उनके बनारस पर चढ़ाई करने की खबर सुन कर लार्ड कैनिंग घबरा उठा। कैनिंग ने लार्ड मार्ककर को सेना और तोपों के साथ कुंवरसिंह के मुकाबले के लिये भेजा। लार्ड मार्ककर और कुंवरसिंह में घोर संग्राम हुआ। इतिहास लेखक का कहना है कि उस दिन ८० वर्ष के बूढ़े ने जो रणकौशल दिखलाया, उसका वर्णन करना कठिन है। एक सफेद घोड़े पर एक बूढ़ा, सवार होकर ठीक घमासान लड़ाई के भीतर बिजली की तरह इधर से उधर लपकते हुए दिखाई दे रहा था। लार्ड मार्ककर की पराजय हुई, उसे अपनी तोपों सहित पीछे हटना पड़ा और वह आजमगढ़ की ओर भागा। कुंवरसिंह ने उसका पीछा किया। कुंवरसिंह ने लार्ड मार्ककर और उसकी सेना को किले में कैदकर किले पर घेरा डाल दिया।

पश्चिम की ओर से सेनापति लार्ड स्मार्ड मार्क की सहायता के लिए आजमगढ़ की ओर बढ़ा। कुंवरसिंह को इस बात का पता चल गया। कुंवरसिंह ने लेगर्ड की सेना को छकाने की सोची। वे आजमगढ़ से चल दिये। लेगर्ड की सेना तानू नदी के पुल से आजमगढ़ आने वाली थी। कुंवर-साहब ने अपनी सेना का एक दल उस पुल पर लेगर्ड की सेना से मुकाबला करने को भेज दिया और अपनी शेष सेना लेकर कुंवरसिंह गाजीपुर की ओर बढ़े। यह छोटा सा दल बड़ी बहादुरी के साथ उस सेना का मुकाबला करता रहा। जब दल ने देखा कि हमारी मुख्य सेना काफी दूर निकल गई है तो उसने रास्ता छोड़ दिया और स्वयं भी वह दल अपनी सेना से जा मिला। लेगर्ड को पहले तो इस चाल का पता न

चला, पीछे से जब उसे ज्ञान हुआ तो उसने बारह मील तक कुंवरसिंह का पीछा किया, किन्तु कुंवरसिंह हाथ न आ सके। इसी तरह सेनापति डगलस से नघई नामक ग्राम के निकट एक करारी मुठभेड़ हुई। इसमें भी कुंवरसिंह की विजय हुई। किन्तु बहुत सा सामान इनका शत्रु के हाथ लगा।

कुंवरसिंह लगातार बहुत समय तक युद्ध करते-करते कुछ थक से गये थे। कुछ समय के लिए इन्होंने विश्राम करने की सोची। परन्तु इन्हें विश्राम करने का मौका कहां था ? इन्होंने गंगा पार करके जगदीशपुर जाने का निश्चय किया। किन्तु इस तरह से गंगा पार करके जाना आसान न था, डगलस कुंवरसिंह का पीछा बराबर कर रहा था। वह इस बात की फिराक में था कि किस तरह कुंवरसिंह की ताकत कम की जाय। कुंवरसिंह ने गंगा के पास पहुंच कर यह अफवाह उड़ा दी कि मेरी सेना बलिया के पास हाथियों पर गंगा पार करेगी। अंग्रेजी सेना उसी स्थान पर जाकर कुंवरसिंह को रोकने के लिए डट गई, किन्तु कुंवरसिंह उस स्थान से सात मील दक्षिण शिवपुर घाट से रात के समय नावों से पार उतर गये। अंग्रेजी सेना को जब इस चाल का पता चला तो वह शिवपुर पहुंची। कुंवरसिंह की समस्त सेना गंगा पार हो चुकी थी, केवल एक अन्तिम नाव रह गयी थी; कुंवरसिंह इसी नाव में थे। ठीक जिस समय नाव बीच धारा में पहुंची, अंग्रेजी सेना के किसी सिपाही का चलाया हुआ गोला, कुंवरसिंह की दाहिनी कलाई में आकर लगा। कुंवरसिंह का दाहिना हाथ निकम्मा हो गया। समस्त शरीर में विष फैल जाने के डर से बायें

हाथ से तलवार खींच कर अपने घायल दाहिने हाथ को स्वयं एक वार में कुहनी से काट कर गंगा में फेंक दिया। घाव पर कपड़ा लपेट कर कुंवरसिंह ने गंगा पार किया। अंग्रेजी सेना उस पार उनका पीछा न कर सकी। गंगा के उस पार कुछ दूरी पर जगदीशपुर राजधानी थी।

आज से आठ मास पहले जिसे अपनी भूमि को छोड़कर चला जाना पड़ा था, उसके दर्शन करके कुंवरसिंह को अपार हर्ष हुआ। आठ महीने तक जगदीशपुर अंग्रेजों के कब्जे में रहा। भाई अमरसिंह की सहायता से कुंवरसिंह ने फिर जगदीशपुर पर कब्जा किया। आरा के अंग्रेज अफसर चकित हो गए। वे लोग इस विजय को सहन न कर सके। अभी कुंवरसिंह को जगदीशपुर विजय किये हुए २४ घण्टे ही हुए थे कि लीग्रैण्ड के आधीन एक सेना आरा से जगदीशपुर के लिये चल दी। कुंवरसिंह को आठ महीने लगातार युद्ध करते हुए बीता था; उनका दाहिना हाथ खराब हो चुका था; पास में एक हजार से अधिक सेना भी न थी। उनके मुकाबले में लीग्रैण्ड की सेना सुसज्जित थी। तोपें भी इस सेना के साथ थीं। कुंवरसिंह के पास कोई तोप न थी। जगदीशपुर से डेढ़ मील की दूरी पर लीग्रैण्ड और कुंवरसिंह की सेना में संग्राम हुआ। विजय कुंवरसिंह की हुई और बहुत सा सामान उनके हाथ लगा।

इस प्रकार सन् १८५८ ई० को विजयी राजा कुंवरसिंह फिर से अपनी रियासत पर शासन करने लगे। इस विजय को प्रसन्नता से दिन देखना उनके भाग्य में बदा न था। घाव अभी तक अच्छा नहीं हुआ था; २३ अप्रैल को तो जगदीशपुर

में प्रसन्नता के उत्सव मनाये जा रहे थे, किन्तु २६ अप्रैल को कुंवरसिंह की तबियत अकस्मात खराब हुई और महल के भीतर ही उनकी मृत्यु हो गई। कुंवरसिंह की मृत्यु के समय स्वाधीनता का हरा झंडा उनकी राजधानी के ऊपर फहरा रहा था। राजा कुंवरसिंह अंग्रेजों के आधिपत्य से अपनी रियासत और प्रजा को स्वतन्त्र कर चुके थे।

□□

नाना साहब

प्रथम भारतीय-स्वातंत्र्य युद्ध के सूतधार के रूप में नाना साहब का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। सन् १८५७ की क्रान्ति का श्रेय आपको ही है। जब तक आप में शक्ति रही, देश की बिखरी शक्तियों को संगठित करके, अन्त समय तक आप अंग्रेजों से मोर्चा लेते रहे और फिर भारतीय-क्रांति के असफल होने पर, आप ऐसे लोप हुए कि फिर कभी आप प्रकट ही नहीं हुए। इस प्रकार आप जीवन भर मोह-माया, आमोद-प्रमोद से विरक्त होकर भी जाने कहाँ जंगल की खाक छानते रहे।

सन् १८५६ ई० में ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी का अंतिम गवर्नर जनरल लार्ड डलहौजी भारत पर शासन करने आया था। वह बड़े क्रूर स्वभाव का था।

इन्हीं दिनों बाजीराव द्वितीय जो पूना के पेशवा थे, राज्य से वंचित कर दिये गये और वह बिठूर में रहने लगे थे। उनके साथ महाराष्ट्रीय परिवार के माधव राव नारायण भट्ट तथा उनकी धर्मपत्नी गंगा बाई भी थी। नाना साहब इसी दम्पति की संतान थे।

नाना साहब का जन्म सन् १८२४ में हुआ था। बाजीराव पेशवा निसंतान थे। अतः ७ जून १८२७ को उन्होंने



नाना साहब

इस बालक को बड़े समारोह के साथ गोद ले लिया। झांसी की रानी महारानी लक्ष्मीबाई और तांत्याटोपे बचपन में इन्हीं नाना साहब के साथ पढ़ते-लिखते और शस्त्र संचालन की विद्या सीखते थे।

सन् १८५१ में बाजीराव द्वितीय के मरने पर लार्ड डलहौजी ने घोषणा की कि उसकी आठ लाख पेंशन में नाना साहब का कुछ भी अधिकार नहीं है अतः नाना साहब ने अपना मामला प्रिवीकौंसिल में उपस्थित करने के लिए, अजीमुल्ला खां नामक अपने विश्वासी प्रतिनिधि को १८५४ में इङ्गलैंड भेजा, किन्तु कोई परिणाम न निकला। फलतः अजीमुल्ला खां ने लंदन में सतारे के प्रतिनिधि रंगो बापूजी से सन् १८५७ की सशस्त्र क्रान्ति करने का निश्चय किया। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए बिठूर में सन् १८५६ में एक गुप्त संगठन की स्थापना की गई। नानाजी इसके नेता बने। नाना साहब ने भारत भर में अपने प्रचारक भेजे। मैसूर और दिल्ली के बीच के सब राजाओं को क्रांति में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया गया। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ने भी इसमें भाग लिया। अनेक फ़कीर, पंडित तथा संन्यासी जनता में और सैनिकों में स्वातंत्र्य युद्ध का प्रचार बड़े संगठित रूप से करने लगे। क्रान्तिकारी पंडित और मुल्ला सेना के धार्मिक विभाग में भी भर्ती हो गये। बहुरूपिये, जादूगर तथा ज्योतिषियों ने क्रान्ति का प्रचार स्त्रियों में किया। मद्रास तक में इस क्रान्ति का प्रचार किया गया। नाना साहब ने अपने भाई बालाजी के साथ तथा अजीमुल्ला के साथ तीर्थ यात्रा के

बहाने समस्त देश का दौरा किया और व्यापक रूप में क्रान्ति का प्रचार किया।

३१ मई सन् १८५७ को देश में एक साथ क्रांति करने की योजना तैयार की गई, इसके सन्देह में कितनी ही देशी सेनाएँ तो निःशस्त्र भी कर दी गईं।

आखिर १० मई रविवार को सायंकाल ५ बजे, जब गोरे गिरजा घरों में थे, मेरठ के सैनिकों ने अंग्रेजों को मारना शुरू किया। मेरठ के प्रायः सभी अंग्रेज मारे गये! बचे-खुचे भाग निकले। इसके बाद दिल्ली के लाल किले के अंग्रेजों को मार कर बहादुरशाह को फिर बादशाह बनाया गया और उसे २१ तोपों की सलामी दी गई। दिल्ली, कानपुर, कालपी, ग्वालियर, अलीगढ़, नसीराबाद, बरेली, मुरादाबाद, बदायूँ, शाहजहांपुर, झांसी, रुहेलखंड आदि से अंग्रेजों का शासन समाप्त कर दिया गया। बाद में अंग्रेजों ने उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। अंग्रेजों की लूटमार और क्रूरता इतनी उस समय बढ़ गई थी कि कई-कई सौ व्यक्तियों को एक ही साथ फांसी दी जाती थी। उधर नाना साहब का सर्वत्र आतंक छाया हुआ था।

कानपुर में जब दिल्ली की क्रान्ति का समाचार पहुँचा तो अंग्रेजों ने अपना तथा अपने खजाने की रक्षा की जिम्मेदारी नाना साहब को सौंप दी यहाँ लगभग १००० अंग्रेज औरत और बच्चे थे। यहाँ पर ४ जून को ही अंग्रेजी शासन समाप्त हो चुका था। अतः नाना साहब के प्रतिनिधि ज्वाला प्रसाद और अजीमुल्ला से अंग्रेजों ने भेंट करके यह तै कर लिया कि अंग्रेज अपने अस्त्र-शस्त्र और खजाना नाना साहब को सौंप दें

और नाना साहब उन्हें इलाहाबाद पहुँचाने का प्रबन्ध करें।

अंग्रेजों ने उसी दिन शाम को सब कुछ नाना साहब के सुपुर्द कर दिया। अंग्रेजों को गंगा जी के द्वारा इलाहाबाद भेजने के लिए नाना साहब ने ४० नावें तैयार कराई और उन्हें खाद्य सामिग्री से भर पूर कर दिया। इन नावों को २७ जून को कानपुर के सत्तीचौरा घाट से भेजने का प्रबन्ध किया गया था। इसी समय कानपुर के स्वतंत्र होने का समाचार सुनकर काशी और प्रयाग के हजारों सिपाही भी कानपुर आ पहुँचे। कहते हैं कि इनके बाल-बच्चों पर अंग्रेजों ने अत्याचार किया था।

जैसे ही नावें चलीं, एक बिगुल का शब्द सुनाई पड़ा और बात की बात में किनारे पर तोपों और बन्दूकों के शब्द एक दम गरज पड़े। नावों में आग लगा दी गई जिससे सभी अंग्रेज, औरतें और बच्चे, पानी में कूद पड़े। इनमें कुछ तैरे, कुछ डूबे और कुछ जल मरे। ३० जून को केवल ४०० पुरुष १२५ अंग्रेज स्त्री-बच्चे शेष पाये गये स्त्री-बच्चों को नाना साहब ने बड़े सम्मान के साथ एक कोठी में बन्दी बनाकर रखा।

२८ जून को कानपुर में एक दरबार करके नाना साहब ने दिल्ली के सम्राट् के सम्मान में १०१ तोपों से वन्दना दी। नाना साहब के सम्मान में २१ तोपों की सलामी दी गई और २ जुलाई को बिठूर में उनका राजतिलक किया गया।

इसके बाद क्रान्ति की ज्वालाएँ उत्तर प्रदेश, बिहार, दिल्ली, ग्वालियर और राजपूताना आदि में फैल गई। अंग्रेजी सेना कानपुर आ गई। कानपुर का पतन हो गया और अंग्रेजों

ने बिठूर जाकर नाना साहब का महल गिरवा दिया और सभी मन्दिरों को तोड़वा दिया।

नाना साहब अपने साथियों के साथ नैपाल चले गये, लेकिन वहां के सम्राट् ने इनके नाम एक विरोध पत्र भेजा और अंग्रेजों को यह छूट दी कि वह नैपाल में जाकर उन्हें पकड़ ले। नाना साहब को वहां से हट जाना पड़ा। इसके बाद वह कहां चले गये इसका कुछ पता नहीं।

□□

महारानी लक्ष्मीबाई

भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में लक्ष्मीबाई का प्रमुख स्थान है; जिस प्रकार भारत के सुपुतों ने समय-समय पर अपने को बलिदान किया है उसी तरह भारत की पुत्रियों ने भी अपना उत्सर्ग किया है। ऐसी ही प्रातः स्मरणीया श्री महारानी लक्ष्मीबाई भी थी।

महारानी लक्ष्मीबाई का जन्म सन् १८३५ ई० में बनारस में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री मोरोपन्त ताम्बे था। वे महाराष्ट्र ब्राह्मण थे। अन्तिम पेशवा जब पदच्युत होने पर बिठूर भेजे गये तो उनके भाई चिमन्न जी आपा काशी चले आये। आपा जी के साथ ही मोरोपन्त ताम्बे भी काशी आये थे। महारानी का जन्म का नाम मनूबाई था। ज्योतिषियों ने कन्या के ग्रहों को देख कर यह भविष्यवाणी की थी कि यह कन्या बड़ी तेजस्विनी होगी और किसी की रानी होगी।

थोड़े ही दिन बाद आपा जी का देहान्त हो गया; ताम्बे जी निराश्रय हो गये। उनके सहारे, एक मात्र-आधार स्वरूप आपा जी चल बसे; ऐसी हालत में वे काशी कैसे रह सकते थे। वे बिठूर उनके भाई के पास चले आये और वहीं पर रह कर अपना समय बिताने लगे। तीन, चार वर्ष की आयु



रानी लक्ष्मीबाई

में मनूबाई की माँ मर गई। पिता को ही मनूबाई की देख-रेख करनी पड़ी। पेशवा-का मनूबाई पर विशेष प्रेम था। मनूबाई

अत्यन्त रूपवती थी। मनूबाई और पेशवा का दत्तक पुत्र नाना साहब दोनों साथ ही साथ खेला करते थे, साथ ही साथ पढ़ा-लिखा करते थे। जो काम नाना साहब करते थे, मनूबाई भी उसका अनुकरण करती थी। नाना साहब घोड़े पर चढ़ना सीखते, शिकार करने जाते, तलवार चलाना सीखते थे। मनूबाई भी वे ही सब काम करती और सीखती थी। और नाना साहब से जल्दी सब काम में निपुणता तथा हस्तलाघव प्राप्त कर लेती थी। एक दिन नाना साहब को हाथी पर चढ़ते देख मनूबाई भी हाथी पर चढ़ने की जिद करने लगी। पेशवा ने कहा—"तेरे भाग्य में हाथी की सवारी कहाँ बदी है" ? उसे बात लग गई, फौरन उत्तर दिया—"मेरे भाग्य में एक नहीं दस हाथी बदे हैं"। इसके बाद थोड़े ही समय में पढ़ने-लिखने के साथ-साथ युद्ध कला में भी प्रवीण हो गई।

मनूबाई जब आठ वर्ष की हुई तो झाँसी के राजा गङ्गाधर राव से उसका विवाह हो गया; विवाह के दिन से ही उसका नाम लक्ष्मीबाई पड़ गया। १६ वर्ष की उम्र में लक्ष्मीबाई के एक पुत्र उत्पन्न हुआ, पर वह शीघ्र, ही मर गया, जिससे राजा गंगाधर को बड़ा दुख हुआ और उसी पुत्र-शोक के कारण उनका शरीर दिन पर दिन क्षीण होने लगा तथा उसी प्रगाढ़ शोक के कारण उनकी मृत्यु भी हो गई। मरने के पूर्व उन्होंने एक दत्तक-पुत्र गोद लिया था।

महारानी लक्ष्मीबाई ने पति का विधिवत क्रिया कर्म किया। इस समय रानी की उमर अठारह वर्ष की थी। ऐसे समय में उन पर ऐसा महान् दुःख आ पड़ा। एक तरफ महान् राज्य शासन-भार था, दूसरी ओर पति-वियोग की असह्य वेदना हृदय

को आहत कर रही थी। रानी का यदि उस समय कोई सहारा था तो वही उसका दत्तक-पुत्र। रानी ने ब्रिटिश सरकार की सेवा में एक खरीता भेजा कि सरकार उनके दत्तक-पुत्र को राज्य का अधिकारी स्वीकृत कर ले, किन्तु सरकार ने उसका कोई उत्तर नहीं दिया। फिर रानी ने दूसरा खरीता भेजा लेकिन उसका भी कोई उत्तर नहीं मिला। वहां तो कुछ दूसरा ही रहस्य था। सरकार रानी के दत्तक-पुत्र को स्वीकार करना नहीं चाहती थी। यदि वह स्वीकार कर लेती तो झांसी का राज्य उनके कब्जे में कैसे आता। लार्ड डलहौजी ने रानी को एक आज्ञापत्र भेजा। उसमें उसने लिखा कि 'झांसी को सरकार ने ब्रिटिश राज्य में मिला लिया है, लक्ष्मीबाई किला खाली कर दें, उन्हें पांच हजार रुपया महीना पेन्शन दी जायगी। वह अपनी सेना तोड़ दें, और नौकर घटा दिए जायँ' रानी लार्ड का पत्र पाकर व्याकुल हो गई, उसको मर्मान्तिक पीड़ा हुई। पति-पुत्र के वियोग का दुःख उस पर से अभी दूर न हो सका था, उस पर इस घटना ने उसके कोमल हृदय को बहुत आघात पहुँचाया। रानी मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं, पर चारा ही क्या था? विवश होकर पेन्शन स्वीकार करनी पड़ी।

महारानी लक्ष्मीबाई ने एक पवित्र सती स्त्री की भाँति अपना वैधव्य जीवन बिताना शुरू कर दिया। प्रातः काल चार बजे उठकर, स्नान, ध्यान, पूजा—पाठ, आदि से आठ बजे तक निवृत्त होकर महल से भीतर ही भ्रमण करती थी, उसके बाद भोजन करके कुछ विश्राम करती और अपने दैनिक कार्य में लग जाती थी। इसके बाद अपने हाथ से ग्यारह सौ राम नाम की आटे की गोलियाँ बनाकर मछलियों को खिलाती फिर

रात के आठ बजे तक शास्त्र पुराणादि को सुनती थीं। तत्पश्चात् भोजन करके ईश्वर का स्मरण करते हुए सो जाती थी। यही उनका नित्य का काम था। उनके पिता मोरोपन्त घर का काम करते थे।

रानी के साथ किये गये इस प्रकार के व्यवहार का जनता पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा। लार्ड डलहौजी ने जिस स्वार्थ परायणता का परिचय दिया था वह सभी के हृदयों में कांटे की तरह खटक रहा था। मध्यभारत और उत्तर भारत के बीच झांसी ही एक ऐसा स्थान था, जहां से सिंधिया तथा अन्य राजाओं को परास्त किया जा सकता था और मध्यभारत की बड़ी-बड़ी रियासतों पर काबू रक्खा जा सकता था। भला अंगरेज लोग ऐसे कीमती स्थान को कब छोड़ने वाले थे। इन्हीं स्वार्थों से प्रेरित होकर दत्तक-पुत्र को आमान्य करार देकर, झांसी को सबके देखते अपने आधीन कर लेना अंगरेजों की यह नीति लोगों ने पसन्द न की, प्रत्युत इसके विपरीत लोगों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। यह घृणा दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही थी। इसी बीच में सन् १८५७ ई० में विद्रोह की आग भभक उठी और वह आग धीरे-धीरे चारों तरफ फैलने लगी। झांसी भी इस विद्रोहाग्नि से कब अछूता रह सकती थी, झांसी में भी हलचल मचने लगी। अंगरेजों को भी भय उत्पन्न हुआ, उन्होंने रानी से विद्रोह शान्त करने के लिये कहा—परन्तु रानी बेचारी इस अवस्था में सरकार की क्या सहायता कर सकती थी; रानी अब वह रानी कहां थी, न तो उसके पास अस्त्र-शस्त्र थे, न फौजें थीं, वह क्या करती? इस पर भी वह जो कुछ कर सकती थी उसने बैर—भाव

भुलाकर किया। अंगरेज स्त्री, बच्चों को अपने किले में शरण दी, लगभग सौ आदमी भी मदद के लिये भेजे किंतु इन सबसे क्या हो सकता था, बलवाई जोर पकड़ते गए। उन्होंने कितने ही अंगरेजों को क्रूरता के साथ बध किया और महारानी के किले को घेर कर उनसे तीन लाख रुपये मांगे। रानी ने उन्हें समझाया, पर वे कब मानने वाले थे। रानी से रुपयों के लिये आग्रह करने लगे। रानी को मारने तक की धमकी देने लगे और किले में आग लगाने तक को तैयार हो गये। तब तो रानी को बहुत दुःख हुआ और उसने विवश होकर कोई उपाय न देखकर अपने गहने दे दिये और किसी तरह उनसे अपनी जान उस समय छुड़ाई। अब झांसी में अंगरेजों का कोई प्रभाव न रह गया था और एक तरह शासन उठ सा ही गया था। बलवाइयों का आतंक तो चारों ओर छा ही गया था। कुछ शान्ति मिलने पर रानी ने इस बलवे की सूचना सागर के कमिश्नर को दी। अंगरेजों ने भी जब तक कोई अंगरेज झांसी न पहुँचे तब तक के लिये रानी को ही झांसी का शासन सौंप दिया।

ज्योंही रानी ने शासन की बागडोर सम्हाली, त्योंही शिवराव ने झांसी पर आक्रमण किया। रानी के पास कोई भी साधन न थे। इस पर भी रानी ने जिस चतुरता से शत्रु पर विजय पाई, वह एक आश्चर्य की बात थी। शिवराव अपना सा मुंह लेकर लौट गया। इतने में ओरछा के दीवान नत्थे खां ने बीस हजार सवार लेकर हमला कर दिया। रानी ने ब्रिटिश सरकार से सहायता चाही, पर सब व्यर्थ। नत्थे खां बड़े जोरों पर था। इस पर भी रानी ने हिम्मत न हारी।

किले में रानी ने एक बड़ी सभा की और सभी को समझाया। उनको लड़ाई के लिये उत्साहित किया, किन्तु कायरों पर कब रंग चढ़ सकता था। मारे क्रोध के रानी की आँखें अग्नि वर्षा करने लगीं और होंठ फरफराने लगे। वह क्रोध में आकर बोली 'धिक्कार है तुम लोगों के मानव जीवन को। मैं तो स्त्री होकर अपने साहस, धैर्य और बल पर विश्वास करके रण से विमुख कदापि नहीं हो सकती। चाहे तुम लोग कायर बने रहो।'

भाषण सुनते ही सभी बहुत लज्जित हुए और सब में एक बड़ी उत्तेजना फैल गई। सभी युद्ध की तैयारियाँ करने लगे, तलवारें खिचने लगीं। किले के बुर्ज ठीक किये गये, उन पर तोपें लगा दी गईं। रानी ने मर्दाना वेश धारण किया और विद्युत् की भाँति सब में एक अपूर्व जोश पैदा कर दिया, कायर वीर बन गये।

नत्थे खां ने बड़े वेग से आक्रमण किया और अपनी सारी शक्ति लगा दी, किन्तु रानी के आगे उसकी एक न चली। तलवार की धार से रण-क्षेत्र चमचमा उठा। सैकड़ों रण बांकुरों की लोथों से भूमि पट गई। नत्थे खां अपनी जान लेकर भागा, रानी की विजय हुई, किले पर विजय का झण्डा फहराया गया।

रानी ने जान पर खेल कर अंग्रेजों के राज्य की रक्षा की और झांसी को विद्रोहियों के पंजे से बचाये रक्खा। झांसी को छोड़ कर अन्य स्थानों पर विप्लवकारियों ने अपना कब्जा जमा लिया था। अंग्रेजों को रानी की जीत से प्रसन्न होना चाहिए था। किन्तु किसी के बहकाने से और यह अफवाह उड़ाने से कि रानी अंग्रेजों के विरुद्ध हैं, अंग्रेजों ने बिना इस

बात की जाँच किये हुए ही उस सबला पर आक्रमण कर दिया। रानी को जब यह पता लगा कि मेरे विरुद्ध अंग्रेजों को किसी ने भड़काया है तो उसने तुरन्त आगरे के कमिश्नर को एक खरीता भेजा जिससे कि गलतफहमी दूर हो जाय; पर इस बात पर ध्यान कौन देता है। अंग्रेजों को झाँसी अपने कब्जे में करनी थी, भला उस पर वे किसी का शासन किस प्रकार देख सकते थे? हुक्म हुआ कि 'किला फौरन खाली कर दो गोला-बारूद सब हवाले करके सामने हाजिर हो'। स्वाभिमानिनी रानी को यह अपमान कब सह्य था,? रानी अंग्रेजों के स्वार्थमय अभिप्राय को समझ गई। इधर सर ह्यू रोज एक बड़ी सेना लेकर चढ़ आया। रानी को यह विश्वास न था कि अंग्रेज इतनी शीघ्रता करेंगे; वे क्षण भर भी न रुकेंगे। रानी अचेत थी, उसे क्या मालूम था कि मुझे फिर रणभेरी बजानी पड़ेगी। सिर पर सर ह्यू रोज की सेना को चढ़ा देख कर रानी की आँखें खुलीं। वह तिलमिला उठी, मुट्ठी भर वीरों को लेकर रणांगण में कूद पड़ी। कर्नल मैलेसन ने स्वयं लिखा है कि अंग्रेजों के दुर्व्यवहार के कारण महारानी को बलवा करना पड़ा।

रानी के थोड़े से सिपाहियों पर ह्यू रोज का अस्त्र-शस्त्र सुसज्जित दल टूट पड़ा। परन्तु रानी के रणबाकुरों का भी रण-कौशल देखने लायक था। थोड़े से लोगों ने ही दांत खट्टे कर दिये। अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गए। दूसरों की तो कहना ही क्या, स्त्रियाँ तक गोला-बारूद तैयार करती थीं। अंग्रेजों ने किला लेने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सब निष्फल रहा। इतने में एक विश्वासघाती ने यह भेद बता

दिया कि किस ओर से आक्रमण करने से किला कब्जे में आ सकता है। फिर क्या था वैसा ही किया गया। शहर की दीवार बेध दी गई और अंग्रेज भीतर घुस आये। रानी ने जब कोई रक्षा का उपाय न देखा तो नंगी तलवार लेकर निकल पड़ी, और क्षण भर रण-ताण्डव करके और सैकड़ों को स्वर्गधाम भेज कर फिर किले में घुस गई।

रानी ने सोचा अब यहाँ से निकल चलना ही श्रेयस्कर है। दत्तक-पुत्र को अपनी पीठ पर लाद कर और स्वयं घोड़े पर सवार होकर १०-१२ वीर बहादुर अंगरक्षकों को लेकर जब अंगरेजी सेना के जाल से महारानी निकल गई तो ह्यू रोज को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने एक लेफ्टिनेन्ट को पकड़ने के लिये भेजा। रानी एक गांव में अपने उस पुत्र को खाना खिला कर आगे चलने की तैयारी में ही थी कि इतने में लेफ्टिनेन्ट पहुँच गया। उसके साथ में सेना थी। रानी अकेली थी, पर भिड़ गई। रानी का रण-कौशल अद्भुत् था, उसने कमाल कर दिया। उस क्षण वह साक्षात् दुर्गा के रूप में देखी गई। साहब पर एक ऐसा वार किया कि वह छटपटा कर गिर गया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई और रानी पुत्र सहित बिना कुछ खाये-पिये १०२ मील बराबर घोड़ा दौड़ाती हुई कालपी जाकर रुकी तथा पेशवा से मिल गई।

जब रानी पर कुछ वश न चला तो खिसिया कर अंग्रेज तरह-तरह के अत्याचार करने लगे। इधर रानी के पिता ताम्बे को पकड़ कर गोरों ने फांसी दे दी। शहर में आग लगा दी। तीन चार दिन तक झांसी खूब लूटी गई जितने अत्याचार किये जा सकते थे, किये गये। रोमांचकारी दृश्यों को देख

कर हृदय थर्रा उठा था। छोटे-छोटे बच्चों से लेकर अस्सी वर्ष तक के बूढ़े, स्त्री, पुरुषों को निर्दयता पूर्वक मारा गया। झाँसी की इस घटना का उल्लेख स्वयं अंग्रेज ग्रंथकारों ने किया है।

सर ह्यू रोज को इतने से ही सन्तोष न हुआ। जब उसने सुना कि रानी कालपी पहुँच कर पेशवा से जा मिली है, तो उसने कालपी पर चढ़ाई कर दिया। पेशवा की सेना खूब लड़ी पर अन्त में जब उसके पैर उखड़ गये तो रानी ने अपना घोड़ा मँगवाया और अपने सिपाहियों सहित अंग्रेजों पर आक्रमण कर दिया। रानी को इस बार भी विकराल रूप धारण करना पड़ा। उसने ऐसा युद्ध किया कि जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। संसार के पर्दे पर उस वीरांगना की समता नहीं की जा सकती। उसने शत्रुओं के छक्के छुड़ा दिये। पर रानी अकेली कहाँ तक क्या करती, पेशवा की सेना का संगठन ठीक न था, इसी से हारना पड़ा। रानी साफ निकल गई।

इधर अवसर पाकर पेशवा की निर्बलता का अनुभव करके सिंधिया चढ़ आया। बलवाई पहले तो जी-जान से लड़े, किन्तु सिंधिया के सामने उनके पैर न जम सके। बलवाइयों की सेना भागना ही चाहती थी कि महारानी ने अपने दो तीन सौ जवान बुलाये और सिंधिया की सेना पर भूखे शेर की तरह टूट पड़ी। रानी की लपलपाती तलवार से सिंधिया घबरा गया। स्वयं सिंधिया जान बचाकर भागा। रानी के पराक्रम से पेशवा जीता और ग्वालियर का किला अधिकार में आया।

सर ह्यू रोज को कब चैन थी, वह फिर एक बड़ी सेना लेकर आ धमका, उसे पेशवा से डर न था। अगर उसे डर था तो महारानी लक्ष्मीबाई का। कर्नल मैनसिल का कहना है कि महारानी के अतिरिक्त किसी में इतनी बुद्धि और रण-कुशलता न थी कि जो सब तरह की तरकीबें समय पर सुझाता। रानी सिपाहियों को लेकर आगे बढ़ीं और तोपें दागने की आज्ञा दे दी। अंग्रेज घबड़ा गये, दोनों में खूब युद्ध हुआ। अन्त में अंग्रेजों ने चारों ओर से घेर लिया। दनादन गोलियाँ बरस रही थीं, उस घेरे से निकल जाना आसान काम न था। महारानी अपने कुछ साथियों सहित उस विकट व्यूह से निकलने का प्रयत्न कर रही थी। शत्रुओं के घनघोर प्रहार होने पर भी अपनी दासियों और स्वामि-भक्त सरदार रामचन्द्र राव सहित बाहर निकल ही तो आई। कुछ सवारों ने रानी का पीछा किया, निर्दय होकर उन पर अंधाधुन्ध गोलियाँ बरसाई गईं। एक गोली रानी की पीठ में लगी, जिससे उन का शरीर शिथिल हो गया। इतने में गोरे समीप आ पहुँचे। रानी ने भी उन्हें उनकी करनी का फल चखा दिया।

गोली मारने वाले को तलवार के घाट उतार दिया गया वह जरा आगे बढ़ी ही थी कि एक दासी चिल्लाई। पीछे फिर कर देखा तो एक गोरा दासी पर आक्रमण कर रहा था। उसे उसने फौरन काटा और आगे बढ़ी।

महारानी ने तो कोई कसर बाकी न छोड़ी, पर दुर्भाग्य को कोई क्या करे। एक नाले को देखकर घोड़ा अड़ गया इतने में महारानी को एक गोली और लगी। इतने में एक सवार ने धोखे से वार किया, जिससे महारानी के सिर का

दाहिना हिस्सा छिन्न-भिन्न हो गया। उनकी आँख निकल आई।

इतने में एक निर्दयी ने छाती में किर्च भोंक दी। इतने भीषण प्रहारों पर भी रानी ने अपनी तलवारों से उन गोरों के दो-दो टुकड़े कर ही दिये। उनके शरीर में अब कुछ शक्ति न थी, वह धराशायी हो रही थीं। उन्होंने रामचन्द्र राव को इशारा किया। वह नेत्रों से आँसू बहाता हुआ आया और रानी को एक कुटिया में ले गया। महारानी को प्यास लगी हुई थी, गंगा जल पीकर अपने प्यासे पुत्र को प्यार किया भारत की स्वतन्त्रता का स्मरण करती हुई उसने प्राण त्याग दिये। ऐसी देवियों को स्मरण करके भारत अपना मुखोज्ज्वल कर सकता है, जिसकी वीरता की कहानी आज भी कायरों में वीरता, आलसियों में स्फूर्ति, डरपोकों में निर्भयता भर रही है।

□□

खुदीराम बोस

अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव सबसे प्रथम बंगाल पर पड़ा। अंग्रेजी सभ्यता के संस्पर्श में आकर राजा राममोहनराय समझ गये थे कि भारत की उन्नति विदेशी समाजों के संस्पर्श में आकर ही विदेशी विचार-धाराओं से परिचित होकर ही हो सकती है। इसीलिये उन्होंने भारतीय शिक्षा पद्धति में पश्चिमीय विचार-धाराओं के प्रभाव को अत्यन्त उपयोगी समझा, प्रधानतः उनकी ही चेष्टा से बंगाल में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार हुआ और इसी अंग्रेजी शिक्षा के कारण पाश्चात्य क्रांतिकारी भावनाओं ने बंगाल के हृदय को स्पर्श किया। पाश्चात्य सभ्यता के संस्पर्श में आकर नाना प्रकार के आघात पाने के कारण नवीन जागृति उत्पन्न हुई। तब से बंगाल में क्रान्तिमय विचारों की सृष्टि हुई। समय-समय पर लोग अपने विचार जनता में प्रकट करने लगे। इस प्रकार के लोगों का केन्द्र प्रायः कलकत्ता ही था। सन् १९०८ की बात है अप्रैल की तीसवीं तारीख थी। इसी दिन एक बालक ने बम द्वारा अंग्रेज की हत्या करने का प्रयत्न किया और सबसे प्रथम भारतीय विप्लव के बाद घोषणा की। इस बालक का नाम खुदीराम बोस था।

खुदीराम बोस का जन्म सन् १८९१ ई० में कलकत्ते के आस-पास एक अच्छे कायस्थ वंश में हुआ था। खुदीराम अभी



खुदीराम बोस

बालक था, कलकत्ते में शिक्षा पा रहा था। उन्हीं दिनों कल-कत्ता कोर्ट से जज मि० किंग्स फोर्ड ने कलकत्ते में कुछ विप्लव-वादियों को दण्ड दिया था और एक-एक को ढूंढ़ कर उनके

नाश करने के प्रयत्न में लगे हुये थे। विप्लव-वादियों ने बहुत तंग आकर किंग्स फोर्ड को मार डालने का निश्चय किया और इसके लिये दो वीर नियुक्त किये गये—एक प्रफुल्ल कुमार चाकी और दूसरे खुदीराम बोस।

मि० किंग्सफोर्ड अब कलकत्ते से बदल कर मुजफ्फरपुर चले आये थे। दोनों वीर भी मुजफ्फरपुर आकर स्टेशन के पास ही एक धर्मशाला में ठहर गये। धर्मशाला में दस बारह दिन रहे और घूम-घूम कर सब बातों का पता लगाने लगे। उन्होंने अच्छी तरह यह जान लिया कि मि० किंग्सफोर्ड किस रङ्ग की गाड़ी में बैठकर घूमने निकलते हैं, उनके निकलने का कौन सा समय है, किधर से होकर कहाँ को जाया करते हैं इत्यादि जानने योग्य बातों का उन्होंने अच्छी तरह पता लगा लिया था तथा उन्होंने निश्चय किया कि जिस समय किंग्सफोर्ड घूमने को क्लब में जाता है वही समय इस काम के लिये उपयुक्त होगा। दोनों युवक उसकी घात में रह कर अवसर की प्रतीक्षा में रहने लगे।

कई दिन बराबर प्रयत्न करने पर भी वे अपने काम का मौका न पा सके। तीस अप्रैल थी, रात का समय था, लगभग आठ बजे होंगे। बीच सड़क पर एक जोर का धमाका हुआ और थोड़ी ही देर बाद चारों ओर शहर में यह खबर बिजली की भाँति दौड़ती हुई सुनाई गई कि स्थानीय वकील अंग्रेज मि० पी० केनेडी पर किसी ने बम फेंका है जिससे केनेडी की लड़की मर गई, कोचवान मर गया। केनेडी के सख्त चोट आई और उनकी स्त्री भी मरणासन्न है। बात यह थी कि मि० केनेडी की गाड़ी भी उसी रङ्ग की वैसी ही थी, जैसी मि० किंग्सफोर्ड की थी।

उन दोनों को बात मालूम न थी। वे दोनों नवयुवक तो एक क्लब के फाटक के पास वृक्षों की ओट से बम फेंक कर और अपना काम सफल समझ कर नौ-दो ग्यारह हो गये। हाँ, किंग्स फोर्ड के शरीर रक्षक तहसीलदार खाँ और फैजुद्दीन ने शाम को क्लब की सड़क पर उन दोनों को टहलते भी देखा था और तहसीलदार खाँ ने भागते समय भी देखा था।

जब पुलिस को इस घटना की खबर लगी तो वह सचेष्ट होकर चारों तरफ दौड़ने लगी। शहर चारों तरफ से घेर लिया गया। बाहर से आने-जाने वाले लोगों पर तीव्र दृष्टि रक्खी जाने लगी, पर अब इन बातों से क्या होता था। उधर तो वे दोनों भाग निकले थे, खुदीराम रातों रात भागता-भागता मुजफ्फरपुर से पूरब पच्चीस मील दूर बेनी पहुँचा। जगह-जगह पुलिस स्टेशनों, रेल के स्टेशनों पर उन दोनों की हुलिया और पकड़ने के वारण्ट निकाले गये। पुलिस बड़ी सतर्कता से इस मामले की खोज करने में लगी थी।

खुदीराम बोस बेनी पहुँच कर भूख से अत्यन्त व्याकुल था। उसने खाने के लिये सोचा, पर उस समय रात को खाने की क्या चीज मिल सकती थी, वह एक मोदी की दूकान पर लाई-चने खरीदने गया। दूकान स्टेशन के समीप थी, वहीं पर स्टेशन मास्टर अपने पैटमैन से कह रहा था 'मुजफ्फरपुर में दो मेमों की हत्या करके दो नवयुवक भागे हैं, उनके पकड़ने का वारन्ट आया है।

देखो कहीं इस गाड़ी में न आते हों। खुदीराम बोस दूकान पर खड़ा-खड़ा यह बातें सुन रहा था। उसे यह मालूम न था कि अदृष्ट मेरे पीछे लगा है। वह सहसा चौंक पड़ा, और उद्वेग

में आकर कह उठा 'ऐं क्या किंग्सफोर्ड नहीं मारा गया'। पास में खड़े हुये लोगों ने यह ताड़ लिया कि हो न हो यही मारने वाला है—खुदीराम भागा, जोर से भागा, पुलिस के सिपाहियों ने पीछा किया। दो सिपाही उसके पीछे तीन मील तक दौड़ते चले गये। खुदीराम वोस दौड़ते-दौड़ते थक चुका था, अब उसके लिये आगे जाना कठिन था। उसके पास उस समय एक खाली और एक भरा हुआ पिस्तौल था। साथ में तीस कारतूस थे। उसने घूम कर सिपाहियों को डराने की कोशिश की, पर अब व्यर्थ। वह पकड़ लिया गया और रेल पर सवार करके बेनी से मुजफ्फरपुर लाया गया।

खुदीराम के पकड़े जाने की खबर लग गई। जिस समय वह मुजफ्फरपुर के स्टेशन पर उतारा गया, भीड़ का क्या कहना था। सारा शहर उसके देखने के लिये उमड़ पड़ा। सबने देखा उसके मुखपर भोलापन है, पर हँसी होंठों पर इठला रही है। उसके चित्त में उमङ्ग थी और आंखों में निर्भयता झलक रही थी, किसी को विश्वास न होता था कि सत्रह वर्ष का देवमूर्ति बालक भी क्या ऐसा काम कर सकता है।

प्रफुल्लचन्द्र चाकी भी भागता हुआ समस्तीपुर पहुँचा। वह रेल में बैठा था, उसी डिब्बे में एक दारोगा भी बैठा था, दारोगा मुजफ्फरपुर हत्या की घटना सुन ही चुका था। उसे प्रफुल्ल पर सन्देह हुआ। प्रफुल्ल भी कुछ ताड़ गया और दूसरे डब्बे में जा बैठा। दारोगा ने तार द्वारा मुजफ्फरपुर की पुलिस को सूचना दी और हुलिया मालूम कर दो तीन स्टेशन बाद ही प्रफुल्ल को गिरफ्तार करने चला। चाकी ने पकड़ने वालों में एक पर पिस्तौल का वार किया, पर निशाना खाली

गया। अन्त में उसने बचने का कोई उपाय न देख कर दूसरा फायर अपने ऊपर ही करके आत्मघात कर लिया और इस लोक की मानव-लीला समाप्त कर ली। दारोगा हाथ मल कर रह गया, सुना गया कि इस घटना के कुछ ही काल बाद दारोगा दिन दहाड़े कलकत्ते में मार डाला गया। दारोगा का नाम नन्दलाल बनर्जी था।

मजिस्ट्रेट के सामने मुजफ्फरपुर हत्याकाण्ड का मामला उपस्थित हुआ। अदालत में काफी भीड़ थी। सब लोग उसके मामले को सुनने के लिए उत्सुक थे। सभी लोगों की धारणा थी कि भला क्या यह, भोला बालक भी हत्याकारी हो सकता है। मजिस्ट्रेट ने पूछा—बताओ, तुम ने क्या बम फेंका था? उसने वीरता पूर्वक उत्तर दिया "मैंने स्वयं बम फेंका है और हत्या की है।" खुदीराम पर मुकदमा चला और जो कुछ होना था वही हुआ। फैसला सुना दिया गया, खुदीराम बोस को फांसी की आज्ञा हुई। कुछ लोगों ने फैसले के विरुद्ध हाई-कोर्ट में अपील की, वहां भी कोई परिणाम न हुआ, फांसी की सजा बहाल रही। ११ अगस्त फांसी की तारीख निश्चित की गई।

खुदीराम बोस बड़ा प्रसन्नमुख व्यक्ति था। जितने दिन वह जेल में रहा, वह स्वस्थ चित्त और प्रफुल्ल था। मालूम पड़ता था कि उसे मृत्यु का स्वप्न में भी भय न था। जेल के डाक्टर ने फांसी के एक दिन पूर्व खुदीराम को एक देशी आम खाने को दिया। खुदीराम ने उसे चूसा और छिलके को मुंह से फुलाकर खिड़की पर रख दिया। डाक्टर साहब ने लौट कर देखा, आम ज्यों का त्यों रक्खा है। पूछा—तुमने अब तक

आम खाया नहीं ?" "क्यों खा तो लिया। बोस ने हँसते-हँसते कहा—उसे उठाकर देखिए न" डाक्टर साहब ने आम उठाकर देखा तो गुठली नदारद ! सिर्फ छिलका ही छिलका था। डाक्टर साहब तो कुछ झेंप से गये। पर खुदीराम जोर से खिलखिला कर हँस पड़ा। डाक्टर साहब यह दृश्य देखकर बड़े आश्चर्य में थे और सोचते थे कि यह बड़ा ही विलक्षण प्रकृति का मनुष्य है जिसे कल फांसी होने वाली हो वह इतना प्रसन्न हो।

११ अगस्त आन पहुँची, सदा की भांति वह उठा और उसने अपना नित्य कर्म किया। गीता के कुछ श्लोक पढ़े तथा गीता हाथ में लिए हुए हँसता-हँसता फांसी के तख्ते पर जा खड़ा हुआ। मृत्युपाश गले में पड़ गया, देखते-देखते प्राण-पखेरू उड़ गए।

बोस की अन्त्येष्टि क्रिया करने की स्वीकृति बाबू कालीदास ने पहले से ही जिला मजिस्ट्रेट से ले ली थी। यथासमय सुगन्ध, चन्दन और पुष्प मालाओं से सुसज्जित अरथी क्रिया के लिये श्मशान घाट की ओर निकल पड़ी, अरथी के साथ-साथ हजारों की संख्या में जन समुदाय थी। यह उस समय की घटना थी, जिस समय बन्दे मातरम् कहना पाप समझा जाता था। सरकार ने अपने आतंकवाद का फौलादी पंजा प्रजा पर जमा रक्खा था। उस समय यह बात बड़े महत्व और साहस की समझी जाती थी। श्मशान पर चिता बनाई गई, देखते-देखते चिता धधकने लगी उसका मृत्यु-देह क्षण भर में क्षार हो गया। लोगों ने उसके भस्म के लिए छीना-झपटी की, और बड़े प्रेम से उसे अपने पास रक्खा। वह एक तरह से भारत के हृदय का उपास्यदेव बन गया था। □□

मदन लाल ढींगरा

बीसवीं सदी के आरम्भ में जब स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ था, बंगाल की भाँति पंजाब ने भी उसे सहर्ष अपनाया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के युग में पंजाब किसी प्रान्त से पीछे नहीं रहा। जब-जब किसी नवीन विचार-धारा का प्रवाह बहा है, पंजाब ने उसमें पूरा भाग लिया है। देश की पराधीनता का अनुभव पंजाब ने अन्य प्रान्तों के समान ही किया। उसके भी हृदय में कसक पैदा होती रही है। संसार में सभी व्यक्ति एक से नहीं होते। कोई वाक-शूर होते हैं तो कोई कर्मनिष्ठ होते हैं। दोनों ही की देश की आवश्यकता है। दोनों तरह के व्यक्ति देश की विभूतियां हैं। उनसे संसार की सुन्दरता और ज्योति की अद्भुत वृद्धि होती है। उनके अमर बलिदान ही देश की सच्ची सम्पत्ति हो जाते हैं। बीसवीं शताब्दी के प्रथम अमर शहीद मदन लाल ढींगरा ने ही उज्जवल बलिदान का श्री गणेश किया।

ढींगरा ने कोई ऊँचे कुल में जन्म नहीं लिया था, न वे कोई बड़े नेता ही थे, जो शीघ्र ही प्रसिद्धि प्राप्त कर लेते। उन्होंने मूकभाव से ही रह कर जो कार्य किया, वह सचमुच सराहनीय है। इसलिये नहीं कि उन्होंने एक हत्या करके कोई प्रशंसनीय कार्य किया हो किन्तु वे इसलिये प्रशंसा के पात्र हैं



मदन लाल ढीगरा

कि जिस काम को वे उचित समझते थे उसके लिये उनमें अपने को उत्सर्ग करने की अपूर्व क्षमता थी। अपने सिद्धान्त पर न्योछावर करने की उनमें शक्ति थी, इसी विचार से

उन्होंने मातृ-भूमि के चरणों में अपने को बलिदान कर दिया।

ढींगरा का जन्म अमृतसर जिले के किसी खत्री कुल में हुआ था। उनके घर में सारे संसारिक सुख विद्यमान थे। यहाँ से वह बी० ए० पास करके इंगलैण्ड में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए गए। ढींगरा बहुत रसिक और भावुक थे। उनको फूलों और बगीचों से बड़ा प्रेम था, वे सुन्दर उपवनों और कुंजों में बैठकर अपना बहुत सा समय बिताया करते थे। कुछ लोगों का कहना है कि इनमें कुछ चरित्र की निर्बलता भी आ गई थी। हमारी समझ में उनका कहना एक प्रकार से मिथ्या प्रतीत होता है। ढींगरा एक असाधारण मनुष्य था। उसके चेहरे से एक प्रकार की आभा निकलती थी। भारत के स्वदेशी आन्दोलन का प्रभाव इसी समय इंगलैण्ड में भी जा पहुँचा। श्री सावरकर जी ने 'इंडिया हाउस' नाम की एक सभा खोल दी मदनलाल भी उसके सदस्य बन गये। इधर भारत में खुले आन्दोलन के दबाये जाने के कारण क्रान्तिकारी दल ने गुप्त सभाएँ स्थापित कर लीं। यहाँ तक कि सन् १६०८ ई० में अलीपुर षड़यंत्र का मुकदमा खड़ा कर दिया। श्री कन्हाईलाल दत्त, सत्येन्द्रनाथ बसु वारीन्द्र तथा उल्लासकर दत्त आदि की प्राण-दण्ड की खबरें इंगलैण्ड पहुँच गईं।

इन समाचारों से मदनलाल ढींगरा उत्तेजित हो उठा। कहते हैं कि एक दिन रात को श्री सावरकर और मदनलाल ढींगरा बहुत देर तक सलाह करते रहे, तथा अपना जीवन तक उत्सर्ग करने की हिम्मत दिलाते हुए देख कर श्री सावरकर ने मदनलाल को पृथ्वी पर हाथ रखने को कह कर ऊपर

से मदन के हाथ में चाकू भोंक दिया। उस पर पंजाबी युवक ने उफ तक न की, चाकू खींच लिया गया। यह काम श्री सावरकर ने किसी बुरे भाव से नहीं किया था। वह केवल उसके धैर्य और साहस की परीक्षा की दृष्टि से किया गया था। दोनों की आंखों में आंसू भर आये। दोनों एक दूसरे का आलिङ्गन कर खड़े हो गये।

दूसरे दिन से मदनलाल सावरकर की सभा इण्डियन हाउस में नहीं गये। वे भारतीय विद्यार्थियों के लिये खुफिया पुलिस का विशेष प्रबन्ध करने वाले और उनकी स्वतन्त्रता को कुचलने वाले सर कर्जन वायली के द्वारा स्थापित की हुई भारतीय विद्यार्थियों की सभा में जाकर सम्मिलित हो गये। यह देख कर इण्डियन-हाउस के नवयुवक अत्यन्त क्रोधित हुए और मदन को देशद्रोही तथा देश-घातक कहने लगे।

श्री सावरकर जी ने उनको यह कहकर शांत कर दिया कि मदनलाल ने हमारी सभा के लिये काफी परिश्रम किया था। उन्हीं के प्रयत्न से हमारी सभा सफलता पूर्वक चल रही है। हमें तो उनको धन्यवाद ही देना चाहिये।

पहली जुलाई का दिन था, यह बात सन् १६०६ की है। इम्पोरियल इन्स्टीट्यूट के जहांगीर हाल में एक सभा थी। सर कर्जन वायली भी वहां गये हुये थे। वे दो आदमियों के साथ बातें कर रहे थे, कि ढींगरा ने पिस्तौल निकाल कर उनके मुख की ओर तान दी। कर्जन साहब मारे डर के चीख उठे, परन्तु मदनलाल ने तुरन्त दो गोलियां उनके छाती में दाग दीं, जिनसे उनके प्राण पखेरू उड़ गये। थोड़ी देर के बाद ढींगरा पकड़े गये। उनके इस कृत्य का सब तरफ शोर

मच गया। कुछ लोग उनके कृत्य की निन्दा करने लगे। परन्तु उस वीर ने दुनिया की परवाह न की, वह अचल-पर्वत की भांति अपने स्थान पर स्थिर रहा।

श्री सावरकरजी ने कहा कि अभी तो उन पर मुकदमा चल रहा है। इस कारण उन्हें दोषी नहीं कह सकते। किन्तु जिस समय इस प्रस्ताव पर सम्मति ली गई तो सभा के अध्यक्ष श्री विपिन चंद्रपाल यह कह ही रहे थे कि प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृति हुआ समझा जाय। इतने में ही सावरकर जी उठ खड़े हुये और विरोध में अपना व्याख्यान आरम्भ कर दिया। उसी समय एक अंग्रेज ने क्रोध में भर-कर सावरकर के एक घूंसा जमा दिया और कहने लगा "देख अंग्रेजी घूंसा कैसा ठीक बैठता है"—इतना कहना था कि मनचले भारत वासी नवयुवक ने उस अंग्रेज के सिर पर एक लाठी जड़ दी और कहा कि "देख हिन्दुस्तानी डंडा कैसा ठिकाने से बैठता है" वहां शोर मच गया कि भारतीय ने बम चला दिये। भगदड़ मच गई, सभा भङ्ग हो गई और ढींगरा की निन्दा का प्रस्ताव वैसा ही रह गया।

मुकदमा हो रहा था। मदनलाल बहुत प्रसन्न और शांत थे। उनको मृत्यु का तनिक भी भय न था, वे आनंद से अदालत की कार्यवाई को देख रहे थे। वे देख रहे थे कि न्याय के नाम पर दुनिया क्या-क्या रंग रचती है; कैसे-कैसे तमाशे करती है। अंत में उनके बयान की बारी आई। उन्होंने जो बयान दिया वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी था। उन्हीं के शब्दों में यहां उद्धृत करते हैं।

'मैं मानता हूं कि मैंने जो उस दिन एक अंग्रेज की हत्या

की थी, यह उन निर्दयता भरी सजाओं का एक अत्यन्त तुच्छ प्रतिकार है, जो भारत में नवयुवकों को फांसी और काले पानी के रूप में दी गई है। मैंने इस कार्य में अपनी आत्मा के अतिरिक्त और किसी की सम्मति नहीं ली। अपनी कर्तव्य बुद्धि के अतिरिक्त किसी के साथ षडयंत्र नहीं किया। मैं एक हिन्दू होने की हैसियत से समझता हूं, कि देश के साथ अन्याय किया गया अन्याय ईश्वर का अपमान है। मेरे पास मातृभूमि की सेवा के लिये क्या है ? इसलिये मैं यह अपना तुच्छ शरीर उसकी सेवा में अर्पण करता हूँ।'

१६ अगस्त १६०६ का दिन था। उसी दिन इङ्गलैण्ड में मदनलाल ढींगरा को फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया गया, और वह 'बंदे मातरम' कहता हुआ हँसते-हँसते फांसी के झूले पर झूल गया।

□□

ऊधमसिंह

अपने दृढ़ अध्यवसाय और स्थिर विचारों के द्वारा संसार में कभी-कभी साधारण व्यक्ति भी लोकप्रिय और प्रसिद्ध हो गये हैं। आज हम ऐसे ही एक व्यक्ति का कुछ परिचय पाठकों के सामने रखना चाहते हैं जिसने अपने कार्य के द्वारा सारी दुनियां में अपना नाम अमर कर लिया। डायर की हत्या करने के अपराधी के रूप में वह संसार के सामने आया। इसके जीवन पर अभी लोगों ने प्रकाश नहीं डाली है, परन्तु जो भी सामग्री उपलब्ध है उसी के आधार पर हम पाठकों की ज्ञान-वृद्धि के लिये थोड़ा सा संक्षेप में निवेदन करते हैं—

भारत के इतिहास में जलियानवाला बाग का हत्याकाण्ड एक प्रसिद्ध घटना है। कहा जाता है कि जनरल डायर ने जिस निर्दयता से निहत्थे लोगों पर गोली चलवा कर भयंकर कांड किया, उससे सारा पंजाब ही नहीं, समस्त भारत थर्रा उठा। डायर की इस अदूरदर्शिता पूर्ण कार्य का सभी ने एक स्वर से निन्दा की। किन्तु सरकार ने उसके इतने कांड पर भी उसे कुछ न कहा।

अमृतसर के निकट किसी गाँव के रहने वाले ऊधमसिंह के बाप थे। इनकी माता का देहान्त इनकी छोटी ही अवस्था में हो चुका था। इनके पिता शिक्षित और राष्ट्रीय विचारों के



ऊधमसिंह

थे । पंजाबकेशरी लाला लाजपतराय के विचारों का इन पर अच्छा प्रभाव था । जन-जागृति के कार्य में प्राय. इनका विश्वास

था और अपने उदार भावों को ये समय-समय पर अपने समुदाय में प्रकट भी करते रहते थे। जलियानवाला बाग में जब सभा हो रही थी तो इनके बाप भी गये। ऊधमसिंह की अवस्था उस समय ८ या १० वर्ष की थी। यह चौथे या पाँचवें दर्जे में पढ़ता था। ऊधमसिंह घर पर ही रहे। बाद में इनके बाप लौट कर नहीं आये और जलियानवाले बाग में ही वे गोली के शिकार हुए। पिता की मृत्यु से इन्हें महान् दुःख हुआ। इनके नजदीकी रिश्तेदारों ने इन्हें समझा-बुझाकर रक्खा और इनके पालन-पोषण और शिक्षण का प्रबन्ध किया। यद्यपि विवश होने के कारण कुछ कर न सके तो भी पिता की मृत्यु का इनके हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा। यह बचपन से ही बहादुर, तेज और हठीले स्वभाव के थे। जिस बात पर अड़ जाते, उससे हटना जानते ही न थे। इन्ट्रेन्स परीक्षा पास करने के बाद इनकी पढ़ने की ओर रुचि नहीं रही। अपने अध्ययनकाल में ही पिता के बदला लेने का भाव जागृति हो चुका था। किन्तु डायर उस समय भारत में न था; इङ्गलैण्ड को जा चुका था। इन्होंने अपने कार्य की सिद्धि के लिये इङ्गलैण्ड जाने का निश्चय किया। यह किस तरह से लंदन पहुँचे, इसका विशेष वृत्तान्त अभी ज्ञात नहीं हो सका है और न इन्होंने ही किसी से अपने रहस्य को प्रकट किया था। इनका नाम तो उस समय सबके सामने आया जब इन्होंने सन् १९४२ में डायर को मार कर अपनी अन्तिम इच्छा पूरी की। यह पूर्ण युवा थे। २० वर्ष की कठिन तपस्या और सतत प्रयत्न के फलस्वरूप जो कार्य किया, उसके कारण संसार ने इन्हें आश्चर्य-भरी नजरों से देखा। पार्लियामेंट से लौटते समय इन्होंने

रिवाल्वर से 'डायर' का काम तमाम कर दिया। पुलिस के द्वारा ये तुरन्त पकड़ लिये गये और इन पर इङ्गलैण्ड में लगभग ६ महीने मुकदमा चला। अन्त में इन्हें फांसी की सजा दे दी गई। इस तरह इस वीर की ऐहिक लीला खतम हुई।

□□

यतीन्द्रनाथ मुकर्जी

(बाघा जतीन)

विधि का विधान बड़ा अद्‌भुत है। यह रत्नगर्भा वसुन्धरा अक्षय रत्नों की खान है। आज से नहीं, अपितु चिरकाल से यह वसुधा अमूल्य रत्नों की खान है। वह अपने गर्भ से अब तक अनेक कितने रत्न उत्पन्न कर सकी है, इसका ज्ञान करना असम्भव है। प्रकृति की भारत-भूमि पर विशेष कृपा है। जहाँ हमारी यह भूमि उज्ज्वल रत्नों की खान रही है, वहाँ इससे नर-रत्नों की सृष्टि भी बराबर होती रही। इस देश में वीरों की कमी कभी नहीं रही। हरिश्चन्द्र से त्यागी, युधिष्ठिर से धर्मात्मा, भीष्म से ब्रह्मचारी, भीम से बली, अर्जुन से धनुर्धारी अभिमन्यु से वीर बालक, शंकर से विद्वान्, बौद्ध से वीतराग, राणाप्रताप से स्वतन्त्रता-प्रिय, वीर शिवाजी से बहादुर, गुरु गोविन्द से रणधीर, बन्दा से स्वामीभक्त इस भूमि को अपने गुणों से अलंकृत कर गये हैं। इसके बाद भी अनेक वीर निःस्वार्थ भाव से भारत की परतन्त्रता की शृंखला को शिथिल करने के लिए फाँसी के झूले पर हँसते-हँसते झूल गये। अमेरिका को यदि वाशिंगटन; फ्रांस को नेपोलियन, इटली को गैरबाल्डी और इंगलैंड को नेल्सन पर अभिमान हो सकता है



यतीन्द्रनाथ-मुकर्जी

तो भारत मां के चरणों पर अपने को बलिदान करने [वाले वीरों का अभिमान भारत को है ।

सब मनुष्यों में सब प्रकार के गुण और शक्तियां समान रूप से नहीं हुआ करती हैं। परन्तु प्रत्येक गुण से मनुष्य समाज, देश और जाति का उपकार एवं यश प्राप्त कर सकता है। जिनमें सभी प्रकार के गुणों का सम्मिश्रण होता है, वे महापुरुष कहलाते हैं। समाज की वे विभूति हैं। देश और समाज उन पर गर्व कर सकता है। हमारे यतीन्द्र बाबू इसी प्रकार के महान पुरुष थे।

विप्लवयुग के श्रेष्ठ कार्य-कर्त्ताओं में बंग प्रान्त के तत्कालीन सुप्रसिद्ध नेता श्री यतीन्द्रनाथ मुकर्जी का नाम यदि सर्वोच्च रक्खा जाय तो कदाचित् अनुचित न होगा। बंगाल प्रान्त में उस समय क्रांति की अग्नि प्रज्वलित हो चुकी थी। बहुत से नवयुवक उसमें अपने प्राणों की आहुति दे चुके थे। काम भी जोरों पर हो रहा था किन्तु कोई संगठन न था। इस कारण शक्ति का दुरुपयोग हो रहा था। उस शक्ति को केन्द्रित करने के लिये एक असाधारण पुरुष की आवश्यकता थी। जो इस प्रकार का काम करते हैं वे उस युग के प्राणस्वरूप होते हैं। यतीन्द्र बाबू भी उस समय के आन्दोलन के प्राणस्वरूप थे। उन्होंने अपनी अलौकिक प्रतिभा एवं अदम्य शक्ति से विभिन्न दलों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

यतीन्द्र बाबू का जन्म बंगाल प्रांत के नदिया जिले के काला नामक गांव में सन् १८७८ ई० में हुआ था। पाँच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया, पितृ-सुख से वे वंचित हो गये। उनके पालन-पोषण का भार उनकी स्नेहमयी माता पर आ पड़ा। माता उनका अत्यंत लाड़ प्यार से पालन करती थी और अपनी शक्तिभर उसको किसी प्रकार का कष्ट

न होने देती थी। माता की हार्दिक इच्छा थी कि यतीन्द्र बाबू एक सुयोग्य बालक हों, सुयोग्य बनने के लिये उनकी माता ने अधिक परिश्रम किया। वे नहीं चाहती थीं कि मेरा पुत्र कायर या गुलाम हो। वे अपने पुत्र को सदा उपदेश देती रहती थीं हे पुत्र ! संसार में सदैव निर्भय होकर विचरना, संसार की मोह माया में न फंसना। हमेशा अपने चरित्र-बल को बनाये रखना। यतीन्द्र बाबू पर उनके उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा और अन्त समय तक उनके जीवन में उनकी माँ के उपदेशों का प्रतिबिम्ब झलकता रहा। उन्होंने अपना जीवन उत्सर्ग तक कर दिया, पर आदेश पालन न छोड़ा और देश पर मर मिटने वाले पुत्र कैसे होते हैं इसको प्रत्यक्ष दिखला दिया।

यतीन्द्र को शिक्षा उनके मामा के घर पर ही हुई। क्योंकि उनकी माता अपने भाई के पास ही रहती थीं। प्रारम्भिक शिक्षा होने के बाद यतीन्द्र बाबू ने स्कूल में नाम लिखाया और मैट्रिक पास करके एफ० ए० की शिक्षा प्राप्त की। बुद्धि तीव्र होने पर भी यतीन्द्र का मन वैसा पढ़ने में न लगता था जैसा कि खेलने-कूदने और लड़ने-झगड़ने में लगता था। उन्होंने अपनी रुचि के अनुकूल लाठी चलाना, तरह-तरह के व्यायाम करना आदि कामों को सीखा। वे बदन के फुर्तीले थे। घोड़े की सवारी उन्हें अत्यंत प्रिय थी। पैदल चलने का भी उन्हें खूब अभ्यास था। चलती हुई गाड़ी पर चढ़ जाना और उससे उतर पड़ना उनके बायें हाथ का खेल था। साइकिल पर ७०-७५ मील चढ़े चले जाना एक आसान बात थी। कुश्ती लड़ना, तैरना और घूमना उन्हें अच्छा लगता था। शरीर से

भी हृष्ट-पुष्ट थे। बदन गठा हुआ, सुन्दर रोबीला और गौर-वर्ण का था।

एक बार यतीन्द्र को एक खेल सूझा—वे जङ्गल को गये, अचानक उनसे एक चीते से भेंट हो गई। वे डरे नहीं किसी उपाय से जीवित चीते को पकड़ कर शहर में ले आये। जिसे देख कर सब अवाक् रह गये। यतीन्द्र बाबू के साहस का परिचय पाठकों को इसी से लग सकता है कि वे प्रायः इसी तरह के कामों में लगे रहते थे। उन्होंने पढ़ना छोड़ दिया। एक दिन मां ने यतीन्द्र बाबू से कहा—बेटा, इस तरह कब तक जीवन-निर्वाह होगा। मैंने तुम्हें कितने कष्टों से पाला है। इस बुढ़ापे में भी मुझे चैन नहीं है; तुम मेरी तरफ कुछ ध्यान तक नहीं देते। तुम्हें कुछ कमाना चाहिये जिससे हमारा और तुम्हारा काम चल सके। माता की करुणा भरी बातों को सुन कर उनका हृदय पिघल गया और उन्होंने नौकरी करने की ठानी, किन्तु नौकरी भी जल्दी कहां मिलती है। उन्होंने शार्ट-हैंड सीखना प्रारम्भ कर दिया। बुद्धिमान थे ही, कुछ ही समय में होशियार हो गये और कलकत्ते में एक दफ्तर में नौकर हो गये। कुछ समय बाद वहां से मुजफ्फरपुर चले गये। वहां एक बैरिस्टर के यहां काम करने लगे। उसी समय उन्हें एक सरकारी नौकरी मिल गई और वे वहां से गवर्नर के आफिस में आ गये।

यतीन्द्र बाबू नौकरी तो करते रहे, परन्तु उनका हृदय उसके अनुकूल न था। उनके हृदय में तो स्वतन्त्रता की आग सुलग रही थी। वे कब तक उसे दबा सकते थे। उनके स्वाभाविक वीरोचित गुणराव से आच्छादित अग्नि के समान

थे, जो समय पाकर चमकने का अवसर देख रहे थे। नौकरी में रहते हुए भी वे इतने बेफिक्र थे कि उनको किसी बात की परवाह न थी।

सन् १९०५ की बात है। प्रिंस आव् वेल्स कलकत्ता की सड़कों पर से गुजरने वाला था। हजारों नर-नारी फुटपाथों पर जमा थे। एक नुक्कड़ पर एक बग्घी खड़ी थी, जिसमें कुछ महिलाएँ थीं। प्रिंस आव् वेल्स के जुलूस की बढ़िया झाँकी देखने को मिलेगी और उन औरतों को परेशान करने का मजा भी मिलेगा, यह सब सोचकर अचानक ही छः गोरे युवक बग्घी की छत पर चढ़ गये और औरतों के मुखों के आगे पाँव लटकाकर सीटियां बजाते हुए बैठ गये। औरतों के साथ उनके रक्षक भी थे, मगर वे बेबस-से खड़े देखते रहे।

आग की लपट की तरह लपककर जतीन बग्घी की छत पर पहुँचा और इससे पहले कि लोग कुछ समझ पायें कि क्या हो रहा है, वे छहों गोरे छैले सड़क पर चारों खाने चित पड़े थे। उन्होंने जतीन को पीटने की कोशिश की, मगर विफल रहे। अपमान का दूसरा घूंट पी वे भीड़ में मुँह छिपाकर भाग गये।

दो साल बाद जतीन रेल में रानीघाट जा रहा था। उन दिनों तीसरे दर्जे के डिब्बे लोहे के छड़ों से परस्पर अलग किये हुए होते थे। जतीन के पास वाले डिब्बे में एक वृद्ध पुरुष अपनी बेटी के साथ यात्रा कर रहा था। दो गोरे उस डिब्बे में चढ़े; और डिब्बा हालांकि आधा खाली था, पर वे लड़की के अगल-बगल बैठ गये और दोनों ओर से उसे भींचने लगे। वृद्ध ने उनसे बहुत प्रार्थना की कि वे ऐसा न करें, और

जब कोई असर न हुआ तो उसने दूसरे यात्रियों से अपील की कि वे उन्हें समझायें। मगर सबके-सब जड़वत् बैठे रहे—

बाघा जतीन अपने डिब्बे से ही गरज पड़ा। वह उठा। लोहे के छड़ों को हटाकर लपकता हुआ उस डिब्बे में आया और लगा दोनों गोरों को अपने कयामती घूँसों का स्वाद चखाने। दोनों लुढ़ककर फर्श पर गिर पड़े। जतीन दोनों को अपने दोनों पैरों तले दबाये खड़ा हो गया और उन्हें तभी छोड़ा, जब दोनों ने लड़की और उसके पिता से क्षमा माँग ली।

एक बार जतीन दार्जिलिंग जा रहा था। उसी ट्रेन में चार अफसरों की देखरेख में ब्रिटिश सैनिकों की एक टुकड़ी भी जा रही थी। ये अफसर स्टेशनों पर प्लैटफार्मों पर ऐसे टहलते थे, जैसे 'नवाब के पड़पोते' हों। किसी स्टेशन पर जतीन एक मरते हुए यात्री के लिए लोटा-भर पानी लेने को उतरा। पानी लिये वह दौड़ता हुआ वापस आ रहा था कि जरा-सा पानी छलककर एक अफसर की पतलून पर गिर गया। फौरन गोरे अफसर ने अपनी छड़ी जतीन की पीठ पर बरसा दी।

जतीन ने एक बार मुड़कर उसे देखा, मगर रुका नहीं; क्योंकि रोगी पानी के लिए तड़प रहा था। लेकिन अगले ही क्षण वापस पहुँचकर उसने उस अफसर की कलाई को अपनी वज्रमुष्टि में भींच लिया। छड़ी अफसर के हाथ से छूट गयी और दर्द से वह कराह उठा। दूसरे गोरों ने जतीन पर आक्रमण किया; मगर क्षण-भर में ही उनमें से हर-एक धूल में लोट रहा था।

बड़ा हो-हल्ला मचा। जतीन को गिरफ्तार किया गया। मगर पुलिस को उसे छोड़ देना पड़ा, क्योंकि पुलिस को उसने धमकाया कि मुझे रोकोगे, तो बहुत जरूरी सरकारी काम खतरे में पड़ जायेगा, जिसके लिए मैं दार्जिलिंग जा रहा हूँ।

बाद में जब मुकद्दमा चला, तो शुरू में ही न्यायाधीश ने उन पीटे गये अफसरों से पूछा—'तो आप चारों जने पीटे गये ?' अफसर बोले—'हाँ, श्रीमन् !' न्यायाधीश बड़ी देर तक चुप रहा, फिर दुबारा उसने पूछा—'आपका मतलब है, आप चार हट्टे-कट्टे अंग्रेज सैनिक अफसर एक 'नेटिव के मुकाबले में बेकार साबित हुए ?' वे हकला गये—'मगर…' न्यायाधीश ने उन्हें नसीहत दी—'जमाना बड़ा खराब है। क्या आप लोगों को नहीं लगता कि अगर यह मुकद्दमा जारी रखा गया, तो हमारे जो आदमी यहाँ हिन्दुस्तान में हैं, उनका मनोबल बुरी तरह टूटेगा और 'राष्ट्रवादियों को बल मिलेगा ?'

बंगाल में इस समय बलवे का उद्योग करने वाले दो ही दल थे—इनमें से एक के मुखिया यतीन्द्र बाबू थे, दूसरे दल के दो भाग किये जा सकते हैं; एक बंगाल के बाहर काम करता था और दूसरे ने बंगाल के भीतर ही अपना कार्य-क्षेत्र बना रक्खा था। बंगाल के बाहर की कुल जिम्मेदारी रासबिहारी को दी गई, किंतु बंगाल के भीतर जो काम हो रहा था उसका भार किसी एक व्यक्ति पर न था।

यतीन्द्र बाबू कलकत्ते के पथरिया घाट मुहल्ले में प्रायः रहा करते थे, वे एक दिन अपने मकान पर आये हुए थे, वहीं और भी कई भागे हुए क्रांतिकारी थे। उसी समय एक परिचित आदमी आया। जिसके विषय में गुप्तचर होने का सन्देह

हो चुका था। इसके आते ही बिना कुछ सोच-विचार के, बिना कुछ देखे-भाले एक आदमी ने उस पर गोली चला दी और सब भाग खड़े हुए। यद्यपि गोली चलाने वाले यतीन्द्र न थे सर्वथा उससे दूर थे पर मरने के समय गोली खाने वाले व्यक्ति ने यही इजहार बयान दिया कि यतीन्द्र ने मुझे गोली मारी है। अब तक पुलिस यतीन्द्र पर कड़ी दृष्टि अवश्य रखती थी, किंतु कोई ऐसा सबूत न था जिससे वह उन्हें पकड़ सकती। उस व्यक्ति का बयान क्या मिला, पुलिस को मन चाही मुराद मिली पुलिस उनके फिराक में रहने लगी।

इस घटना के बाद यह निश्चय हुआ कि यतीन्द्र बाबू किसी ऐसे स्थान पर रक्खें जायँ जहाँ कि वे सुरक्षित रह सकें, स्थान निश्चित हो गया। जब जाने का समय आया तो यतीन्द्र बाबू गद्गद् स्वर से बोले—भाई, हम लोग यह सौगंध लेकर जीवन-संग्राम में उतरे थे कि जीवन-मरण में सदैव साथ रहेंगे और परस्पर एक दूसरे का विपत्ति में सर्वदा साथ देंगे। अपने साथियों को विपत्ति में छोड़ कर मैं अकेला बाहर जा सकूंगा यह मुझसे न हो सकेगा। वहाँ जाकर मुझे सुख पूर्वक दिन व्यतीत करने की अपेक्षा यह कहीं सुखकर मालूम होता है कि मैं अपने सब साथियों के साथ भूख-प्यास से तड़प-तड़प कर मरूँ। हम तो सिपाही हैं जो हर समय मृत्यु की प्रतीक्षा में तैयार खड़े हैं, इसलिये सभी एक संग रहना चाहते हैं, जिससे एक प्रभावशाली मुठभेड़ की जा सके। अंत में उनकी यही इच्छा पूर्ण हुई।

बालेश्वर के निकट यतीन्द्र बाबू अपने पाँच साथियों के साथ एक अड्डा बनाकर रहने लगे। पुलिस को उनके अड्डे

का पता चल गया, उन्हें भी इसका पता लगा। पुलिस ने उन पर धावा मारा। वे यदि चाहते तो अपनी जान भाग कर बचा सकते थे, पर उनके उस समय दो साथी वहाँ मौजूद न थे और जैसा कि उनकी प्रतिज्ञा थी, व उन्हें छोड़कर अपनी जान बचाना नहीं चाहते थे। वे तो अपने साथियों के जीवन और अपने जीवन में कोई भेद न समझते थे। अस्तु, बहादुर यतीन्द्र रात ही में अपने शेष साथियों के सहित दूर घने जंगल में उन्हें लेने के लिये चल दिये। ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी रास्ता फिर अनजान मार्ग, अंधेरी रात, उसमें भी बारह मील जाकर वापस आना असम्भव ही कार्य था। इन सब बातों की परवाह न करके वे अपने काम में जुट गये। वे असाध्य साधन में प्रवृत्त तो हो गए; पर रात बीत गई। सबेरा हो गया। इस समय पुलिस का पूरा प्रबंध हो चुका था। गाँव-गाँव में रास्तों-रास्तों पर पुलिस की चौकियाँ बैठ गई थीं। सबको जगह-जगह खबर कर दी गई थी कि एक भयंकर डाकुओं का दल उनके इलाके में छिपा हुआ है, जिसे पकड़ने या पकड़वा देने से काफी इनाम मिलेगा। इससे गाँव वाले भी सावधान हो गये।

यतीन्द्र बाबू अपने साथियों सहित चल दिये। इतने पर भी उन्होंने जरा सी भी हिम्मत न हारी। रात दिन नदी-नालों को पार करते हुए थक गए थे, भूख भी सता रही थी, भूख के मारे प्राण व्याकुल हो रहे थे। नदी पार करते समय एक मल्लाह से बोले—भाई! इस समय तुम्हारे पास कुछ हो तो खिलाकर हम लोगों के प्राणों की रक्षा करो, न हो तो थोड़ा भात ही बना दो, पर उस मल्लाह को तनिक भी दया

नहीं आयी और न उसने अपनी हांड़ी तक दी कि वे चावल पका कर खा लेते। उसे तो यह समाया हुआ था कि कहीं इनका धर्म न चला जाय। वाह रे हिंदू जाति! जिसमें चीटियों तक को भोजन दिया जाता है और उनके प्राणों की रक्षा की जाती है, उसने मनुष्यों के प्राणों की रक्षा करना अपना धर्म न समझा। मनुष्य के प्राण चले जायें, पर धर्म न जाय। उस मल्लाह ने अपने जन्म-जन्मान्तर के संस्कारों की पूरी रक्षा की और उनको नरक जाने से बचाया। धन्य है ऐसे मनुष्य!

पुलिस पीछे लगी थी। ज्योंही ये लोग एक गाँव में पहुँचे पुलिस ने धावा बोल दिया। सशस्त्र पुलिस जंगल के दोनों ओर से 'सर्च लाइट' फेंकती हुई यतीन्द्र को ढूंढ़ रही थी। इसी तरह सारी रात बीत गई। सवेरा होने को हुआ, अब क्या हो ही सकता था। आखिर यतीन्द्र ने भी रक्षा का कोई उपाय न देख अपने चारों साथियों सहित सैकड़ों सिपाहियों से मोर्चा लिया। यह दृश्य भी देखने योग्य था। पाठक उसकी कल्पना स्वयं कर सकते हैं कि कई दिनों के भूखे-प्यासे, थके-मांदे पांच बहादुर सैकड़ों सशस्त्र सिपाहियों से मोर्चा ले रहे थे। चारों ओर से धुआंधार गोलियों की बौछार हो रही थी। चारों दिशाएँ कड़ाकड़ और धड़ाधड़ की घनघोर ध्वनि से गूंज उठी थीं, आकाश-मण्डल धूल से धूसरित हो रहा था। भयंकर जंगल में धांय-धांय के सिवाय कुछ सुनाई नहीं पड़ता था। पांच शेरों ने सैकड़ों के दांत खट्टे कर दिये। वे बेचारे कहां तक लड़ते, घन्टों तो लड़े। अन्त में एक गोली साथी चित्तप्रिय को लगी; वह सदा के लिए धराशायी हो गये।

यतीन्द्र भी काफी घायल हो चुके थे। जब उन्होंने देखा कि मेरा भी अन्त है तो शेष तीन साथियों को बड़े आग्रह-पूर्वक आत्म-समर्पण करवा दिया। खुद तो मूर्छित होकर गिर पड़े। प्यास से गला सूख रहा था। क्षीण स्वर से 'पानी' का शब्द सुन कर पास ही पड़ा हुआ खून से सरावोर मनोरंजन सरोवर से पानी लेने चल दिया। यह हालत देख कर पुलिस अफसर का हृदय भी पिघल गया। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मनोरंजन को रोककर वह स्वयं तालाब से पानी भर कर ले आया। उस समय वहाँ कोई वर्तन न था। पुलिस को अपनी टोपी में पानी लाना पड़ा था। पानी लाकर यतीन्द्र के मुख में छोड़ा गया। गले में पानी पहुँचते ही यतीन्द्र को कुछ चेत हुआ। पुलिस अफसर को सामने देखकर यतीन्द्र बोले इस मामले में कुल उत्तरदायित्व मेरा है, इन मेरे साथियों ने केवल मेरे आदेश का पालन किया है।'

गिरफ्तार होने के बाद यतीन्द्र कटक के अस्पताल में रक्खे गये। उनका शरीर इतना क्षीण हो गया था कि उनमें कुछ भी शक्ति न थी। उन्होंने कुछ ही दिनों में अपना नश्वर शरीर छोड़ और सदा के लिये बन्धन से मुक्त हो गये। मनोरंजन और धीरेन्द्र देव को फांसी हो गई। ज्योतिसः को आजन्म काला पानी हुआ, पर उन्हें भी शान्ति कहाँ थी? वह भी उन्हीं में जा मिले।

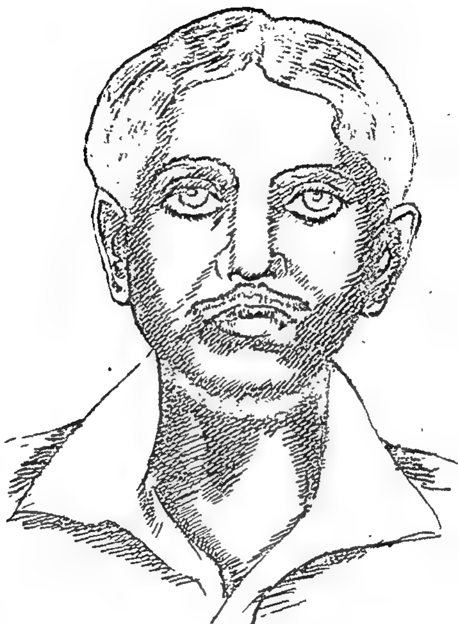
□□

तरुण शहीद हेमू कलानी

'भारतमाता की जय !' और 'इन्कलाब, जिंदाबाद !' उच्चारते हुए २१ जनवरी १९४३ को सक्खर (सिंध) की सेंट्रल जेल में एक अठारह वर्षीय तरुण फांसी के तख्ते पर झूल गया। उसका नाम था हेमन कलानी, जिसे प्यार से लोग हेमू कहकर पुकारते थे। और उसका 'अपराध' था भारत में शोषक ब्रिटिश राज का निर्भीक व सक्रिय विरोध।

हेमू कलानी का जन्म ११ मार्च १९२४ को पुराने सक्खर के विख्यात कलानी परिवार में हुआ था। वहीं सात वर्ष की आयु में उसे ए० वी० स्कूल में दाखिल किया गया। छठी कक्षा पास करने के बाद उसे न्यू सक्खर के तिलक म्युनिसिपल हाईस्कूल में भेजा गया। राष्ट्रीय चेतना के अंकुर तो उसमें पहले से ही थे, अब वह स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय रूप से कूद पड़ा।

इस समय तक हेमू के मन में यह बात स्पष्ट हो चुकी थी कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ आत्मा का वास हो सकता है। अतः वह अपने शरीर को बलवान बनाने में पूरी तरह से जुट गया। पुराने सक्खर के कृष्णमंडल जिमखाने में वह कसरत करता था। कबड्डी, कुश्ती और तैराकी की प्रतियोगिताओं में उसने अनेक पुरस्कार जीते थे। सिंधु नदी का पाट



हेमू कलानी

कम-से-कम समय में तैरकर पार करने में तो उसने रिकार्ड कायम किया था।

उन दिनों 'स्वराज्य मंडल' नामक गुप्त संस्था की बड़ी धाक थी, जिसके सूत्रधार और पथप्रदर्शक थे डा० मंघाराम कलानी। इस संस्था का लक्ष्य था भारत में ब्रिटिश राज का अंत करना। स्वराज्य मंडल की ही विद्यार्थी-शाखा थी 'स्वराज्य सेना' और हेमू इसका नेता बन गया।

ऊँची और मजबूत काठी और आकर्षक चेहरे-मोहरे वाले हेमू के आदर्श-पुरुष थे शहीदे-आजम भगत सिंह। एकांत में वह शहीदे-आजम की भाव-भंगिमाओं का अभ्यास करता रहता था। अक्सर वह अपने गले में फंदा डालकर कुछ महसूस करने की कोशिश करता था। कभी कोई ऐसा करते देखकर सवाल कर बैठता, तो कहता—'मुझे यही पसंद है। मैं अपने देश की खातिर फांसी पर लटक जाना चाहता हूँ।'

बंबई में ८ अगस्त १९४२ को कांग्रेस के अधिवेशन में 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पारित हुआ। ९ अगस्त १९४२ की भोर यह खबर लेकर आयी कि महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल, मौलाना आजाद तथा दूसरे चोटी के नेता गिरफ्तार कर लिये गये हैं। आंदोलन की बागडोर जयप्रकाश नारायण, डा० राममनोहर लोहिया, अच्युत पटवर्धन और श्रीमती अरुणा आसफ अली जैसे युवा नेताओं ने संभाल ली और पूरे देश में क्षोभ और उत्तेजना की लहरें दौड़ गयीं। सिंध प्रांत भी इससे अछूता न रहा।

अक्टूबर की २३ तारीख को, जबकि 'भारत छोड़ो'-आंदोलन अपने शिखर पर था, हेमू को पता चला कि दमन के लिए अस्त्र-शस्त्र लेकर एक सैनिक रेलगाड़ी सक्खर आ रही है। उसने दो दोस्तों को साथ लिया और जा पहुँचा

पुराने सक्खर की नगर-सीमा के बाहर रेल की पटरियाँ उखाड़कर सैनिक रेलगाड़ी को नष्ट करने के लिए।

लेकिन ये तीनों किशोर अभी मुश्किल से ही पटरियों की कोई फिशप्लेट उखाड़ पाये थे कि हथौड़ों की आवाज सुनकर पुलिस दौड़ आयी। हेमू ने दोनों दोस्तों से कहा कि सभी के गिरफ्तार होने का कोई मतलब नहीं; तुम दोनों भाग निकलो! दोस्तों ने उसकी बात मान ली। हेमू गिरफ्तार हो गया।

गिरफ्तारी के बाद की हेमू की कहानी चरित्रबल, निष्ठा और दृढ़ता का एक अनूठा उदाहरण है। उसने सारा अपराध अपने सिर ले लिया। पुलिस ने उसे अकथनीय यंत्रणाएँ दीं, मगर अपने दोस्तों का नाम उसने अपनी जबान पर न आने दिया। न पुलिस उससे स्वराज्य-सेना और स्वराज्य-मंडल के बारे में ही एक भी शब्द उगलवा सकी।

फिर शुरू हुआ अदालती कार्रवाई का स्वाँग। उस पर सैनिक अदालत में मुकद्दमा चला। उसने अपनी पैरवी के लिए कोई भी वकील रखने से साफ इन्कार कर दिया हालांकि सरकार और सक्खर पंचायत ने मिलकर जैसे-तैसे एक वकील उसकी तरफ से खड़ा किया जरूर।

जिरह के दौरान हेमू ने अपूर्व शौर्य दरशाते हुए, तिलक की भाँति न्यायाधीश के सामने कहा कि अंग्रेजों की गुलामी और दमन के विरुद्ध लड़ना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और इसके लिए मैंने जो भी किया है, उस पर मुझे गर्व है; मुझे दु:ख केवल यह है कि सैनिक रेलगाड़ी को नष्ट करने का जो काम मैंने हाथ में लिया था, वह पूरा न हो सका। उसने

दावा किया कि अंग्रेज सेना अगर अस्त्र-शस्त्र की मदद से स्वतंत्रता-संग्राम को कुचल सकती है, तो मुझे भी उस सेना के अस्त्र-शस्त्र नष्ट करने का निश्चय ही अधिकार है। सैनिक अदालत ने उसे आजीवन कारावास का दंड सुनाया था। मगर हैदराबाद (सिंध) स्थित सैनिक मुख्यालय ने, जिसका कमांडर था लार्ड रिचर्डसन, इस दंड को मृत्युदंड में बदल दिया।

मृत्युदंड पाने का समाचार सुनते ही हेमू खिल उठा। उसे बड़ा संतोष हुआ कि अब वह अपने आदर्श पुरुष शहीदे-आजम भगतसिंह की भांति प्राण त्याग सकेगा। बाहर सक्खर के साधुबेला आश्रम के स्वामी श्री १०८ हरनामदासजी, हैदराबाद के साधु टी० एल० वास्वानी, करांची के जमशेदजी मेहता और पुराने सक्खर के पीरजादा अब्दुल सत्तार जैसी सिंध की नामी हस्तियां उसका दंड कम या खत्म करवाने के लिए गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथ गो तक से अपीलें करती रहीं, मगर जेल के भीतर हेमू बेहद संतुष्ट और प्रसन्न था।

२१ जनवरी १९४३ को अचानक फरमान आया कि आज सक्खर की सेंट्रल जेल में हेमू को फांसी दे दी जाये। वह बेतरह मुस्कराता हुआ फांसी घर की ओर चला और रास्ते-भर नारे लगाता रहा-इन्कलाब, जिंदाबाद!···भारत-माता की जय!

उसके गले में फंदा डालने से पहले उससे पूछा गया कि तुम्हारी आखिरी इच्छा क्या है। इस पर उसने फांसीघर में अपने आस-पास खड़े तमाम लोगों से कहा कि सब लोग मेरे साथ दोहरायें—'भारत का झंडा, ऊँचा रहे!···यूनियन जैक, मुर्दाबाद!'

और वहां खड़े जिला-मजिस्ट्रेट को भी मजबूरन उसके साथ ये नारे लगाने पड़े। □□

गेंदालाल दीक्षित

अन्य प्रान्तों की भांति संयुक्त प्रान्त को भी भारत माँ के चरणों में बलिदान होने का सौभाग्य प्राप्त है। राम और कृष्ण की जन्मभूमि ने भी अनेक सुरभित सुमन माँ के चरणों में सादर और सप्रेम समर्पित किए हैं। उन्हीं अमूल्य रत्नों में से एक खास रत्न पं० गेंदालाल दीक्षित भी थे। आपका जन्म आगरा जिले की बाह तहसील के मई नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता का नाम भोलानाथ दीक्षित था। इनकी माँ दुर्भाग्य से—जब ये ३ वर्ष के ही थे—तभी मर गई थीं। हिन्दी मिडिल पास करके आप इटावा अंग्रेजी पढ़ने गये और वहाँ के हाई स्कूल में पढ़ते रहे। वहाँ से आगरा से ही आपने इन्ट्रेन्स की परीक्षा पास की। आगे पढ़ने की इच्छा रखते हुए भी आर्थिक-स्थिति ठीक न होने के कारण पढ़ना छोड़ना पड़ा, और जीविका के लिये औरय्या के डी० ए० वी० स्कूल में अध्यापकी का कार्य करना पड़ा।

वङ्ग भङ्ग के दिन थे, स्वदेशी आन्दोलन चल रहा था, इस आन्दोलन ने नवयुवकों में हलचल सी उत्पन्न कर दी थी। आप पर भी उसका प्रभाव पड़ा। लोकमान्य तिलक के तो आप अनन्य भक्त बन गये। महाराष्ट्र में उधर शिवाजी के उत्सव मनाने का आन्दोलन चल रहा था। आपने भी



गेंदालाल दीक्षित

'शिवाजी समिति' नामक संस्था कायम की। इस समिति का काम नवयुवकों में देश-प्रेम उत्पन्न करना था। बंगाल

के नवयुवकों को प्राणों की किञ्चित् मात्र भी चिन्ता न करते हुए, बम तथा रिवाल्वर का प्रयोग करते देख पं० गेंदालाल ने भी उसी नीति की अनुसरण करने का निश्चय किया, किन्तु उपयुक्त साधन प्राप्त न होने के कारण आपको अपने निश्चय से हटना पड़ा और नीति को त्याग देना ही आपने श्रेयस्कर समझा।

सङ्गठन और प्रचार के कार्य में आर्थिक-संकटों से विवश होकर आपको डाके डालने पड़े, इसके लिए आपने प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाकुओं का साथ किया। अपने स्वार्थ के लिए डाके डालने के आप विरोधी थे। आपके मत में देश हित के लिये डाका डालना कोई दोष न था। आपके दल में अधिकतर अशिक्षित व्यक्ति थे, इसलिये आपको विशेष सफलता न मिली। कुछ दिन के लिये आप बम्बई चले गये। वहाँ से लौटने पर आपको कुछ शिक्षित नवयुवक मिले, जिनके मिलने से आपको यह आशा बँधी कि बंगाल की भाँति यहाँ भी राज-विद्रोह समितियाँ स्थापित हो सकती हैं। आपने उन युवकों को अस्त्र-शस्त्र देकर उन्हें उसका प्रयोग भी सिखलाया। इसी बीच में एक युवक से आपकी भेंट हुई, जिन्हें समिति के लोग 'ब्रह्मचारी' के नाम से सम्बोधित करते थे। ब्रह्मचारी जी ने चम्बल और यमुना के बीच के जंगलों में रहने वाले डाकुओं का संगठन किया। वह ग्वालियर राज्य में डाके डालने लगे। इनका दल खूब बढ़ गया और धन भी खूब इकट्ठा हो गया, ब्रह्मचारी जी डाके डाल कर धन लाते थे। ग्वालियर राज्य की ओर से उनकी गिरफ्तारी का सिर तोड़ प्रयत्न हो रहा था। ब्रह्मचारी के दल के एक आदमी को लोभ देकर फोड़ा

गया और ब्रह्मचारी को पकड़ने का आयोजन किया गया, उस नीच ने भी पकड़वाने का वचन दे दिया।

डाका डालने का एक स्थान निश्चय किया गया। वह स्थान इतनी दूर था कि वहाँ पहुँचने में दो दिन लगते थे। एक दिन जंगल में पड़ाव डालना था। साथ में ८० आदमी थे। राज्य का एक गुप्तचर इनमें आ मिला और जंगल में इनको टिका दिया। स्वयं भोजन लाने को चला गया। थोड़ी देर बाद वह ताजी-ताजी पूड़ी ले आया। ब्रह्मचारी जी और उनका दल क्षुधा से पीड़ित था। यद्यपि ब्रह्मचारी कभी दूसरे का भोजन नहीं करते थे, किन्तु विवश होकर उनको उस दिन वह पूड़ियाँ खानी पड़ी। पूड़ियों के खाते ही जीभ ऐंठने लगी, उनको मालूम हो गया कि इस भोजन में विष मिला है। वह गुप्तचर इनको पूड़ी खाते देखकर पानी लाने के बहाने चल दिया। ब्रह्मचारी जी ने पूड़ियों में जब विष होना अनुभव किया तो तुरन्त उस आदमी पर गोली चला दी। गोली की आवाज सुनते ही पुलिस के बहुत से सवार, जो उस जंगल में छिपे थे आ धमके। परस्पर युद्ध आरम्भ हो गया और खूब गोलियाँ चलीं। जब तक इन लोगों को होश रहा, तब तक वे बड़ी वीरता से लड़े। ब्रह्मचारी और गेंदालाल दोनों आहत हो गये। इनके दल के ३५ मनुष्य उस समय घायल हुए। ब्रह्मचारी, गेंदालाल तथा इनके अन्य साथी पकड़ कर ग्वालियर के किले में बन्द कर दिये गये।

गेंदालाल जी ने 'मातृवेदी' नाम की एक संस्था कायम की थी। उस संस्था के सदस्य ग्वालियर गये और अपने नेता को छुड़ाने का प्रयत्न करने लगे। संस्था के सदस्य महल

देखने के बहाने किले में गये और पण्डित जी से मिले। सब हाल जान कर निश्चय किया गया कि जैसे भी हो पण्डित जी को छुड़ाया जाय। किन्तु असावधानियों के कारण भेद खुल गया, गिरफ्तारियाँ शुरू हो गईं। मामला बहुत बढ़ गया और मैनपुरी सचित्र के नाम से कोर्ट में अभियोग चला।

सरकारी गवाह सोमदेव ने पं० गेंदालाल को इस षड्यंत्र का नेता बनाया और ग्वालियर में उनके पकड़े जाने का हाल कह सुनाया। अस्तु, आप ग्वालियर से मैनपुरी लाये गये। किले में बन्द रहने तथा अच्छा भोजन न मिलने के कारण आपका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। आप इतने दुर्बल हो गए थे कि स्टेशन से मैनपुरी जेल तक जाने में (केवल एक मील में) आठ जगह बैठना पड़ा। आपको तपेदिक का रोग हो गया था। जेल पहुँचने पर आपको जेल सम्बन्धी सब समाचार मिले।

आपने पुलिस वालों से कहा कि तुम लोगों ने इन बच्चों को क्यों गिरफ्तार किया है। बंगाल और बम्बई के बहुत से क्रान्तिकारियों से मेरा सम्बन्ध है। मैं बहुतों को गिरफ्तार करवा सकता हूँ। दिखाने के लियें दो चार नाम भी बता दिये। पुलिस वालों को आशा हुई कि जेलों के कष्टों के कारण यह सारा हाल खोल देगा। यह अवश्य ही सरकारी गवाह बन जावेगा। अब क्या था, पण्डित जी सरकारी गवाह समझे जाने लगे। पुलिस आपकी आवभगत करने लगी। वे जेल से सरकारी गवाहों में रख दिये गये। एक दिन मालूम हुआ कि पं० गेंदालाल एक और सरकारी गवाह सहित गायब

हैं। पुलिस ने बहुत सर मारा, परन्तु गेंदालाल का पता न लगा सकी।

पं० गेंदालाल वहाँ से भाग कर रामनारायण के साथ कोटा पहुँचे। वहाँ दुष्ट रामनारायण आपका सब सामान लेकर और एक कोठरी में आपको बन्द करके चलता बना। तीन दिन तक बिना अन्न-जल के आप उस कोठरी में बन्द रहे और बड़ी कठिनाई से कोठरी से निकल कर पैदल चलकर आगरा पहुँचे। किन्तु दुर्भाग्यवश वहाँ भी आपको आश्रय न मिला। कहीं भी ठहरने का स्थान न मिलने पर विवश हो आप अपने घर चले गये। घर वालों को पुलिस ने बुरी तरह सता रक्खा था। आपको देखकर सब बड़े भयभीत हुए। घर वालों ने सोचा—पुलिस को बुलाकर आपको गिरफ्तार करा दिया जाय। कैसी शोचनीय स्थिति थी, घर वाले भी देश के काम करने वाले को घृणा और भय की दृष्टि से देखते थे। पिता पुत्र को इसलिये घर में रहने देना नहीं चाहता था कि पुलिस उसको परेशान करेगी। आपने घर वालों की यह दशा देखकर कहा—'आप घबड़ाइए नहीं, मैं बहुत शीघ्र ही आप लोगों के यहाँ से चला जाऊँगा।' अन्त में दो तीन दिन बाद आपको अपना घर छोड़ना पड़ा। उस समय आपकी हालत इतनी कमजोर थी कि दस कदम चलने पर भी आपको मूर्च्छा आ जाती थी। जैसे-तैसे आप दिल्ली पहुँचे। वहाँ जीवन निर्वाह के लिये एक प्याऊ पर नौकरी कर ली। स्वास्थ्य दिनों दिन बिगड़ रहा था। अपनी अवस्था का परिचय देते हुए आपने अपने एक सम्बन्धी को पत्र लिखा।

पत्र पाते ही वह सज्जन आपकी पत्नी को साथ लेकर दिल्ली आ गये।

बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी स्वास्थ्य में कोई परिवर्तन न हुआ। दिनों दिन स्वास्थ्य और खराब होता गया और आपको घड़ी-घड़ी पर मूर्च्छा आने लगी। आपकी स्त्री यह दशा देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। उस समय का हृदय विदारक दृश्य आपके आत्मीय से न देखा गया। वह बाहर आकर रोने लगे। पण्डित जी को जब होश आया और उन्होंने यह हालत देखी तो अपने सम्बन्धी को ढांढ़स देते हुए कहा कि तुम रोते क्यों हो। तुम लोग दुःख मत करो। यदि देश-सेवा हेतु प्राण चले गये तो मैंने अपना कर्त्तव्य पालन किया। मुझे शान्ति के साथ अपना अन्तिम जीवन बिताने दो। पत्नी को सम्बोधन करके पूछा—तुम क्यों रोती हो? पत्नी ने उत्तर दिया—प्राणनाथ! आपके सिवाय मेरा इस संसार में कौन है? पण्डित जी ने एक ठण्डी सांस लेकर और मुस्कराते हुए कहा—'आज लाखों विधवाओं का कौन है? लाखों अनाथों का कौन है? २२ करोड़ किसानों का कौन है? दासता की बेड़ियों में जकड़ी हुई भारत माता का कौन है? जो इन सब का मालिक है, वही तुम्हारा भी। तुम अपने को सौभाग्यवती समझो, यदि मेरे प्राण देश सेवा के निमित्त जाते हों। मुझे केवल इतना ही दुःख है कि मैं अत्याचारियों के अत्याचार का बदला न ले सका। आपने फिर कहा—तुम्हारे पिता अभी जीवित हैं, भाई भी हैं और मेरे बहुत से कुटुम्बी तथा मित्र हैं, वे सब तुम्हारी मदद करेंगे। तुम किसी प्रकार की चिन्ता न करो।

इसके पश्चात आप फिर बेहोश हो गये, स्थिति बड़ी भयंकर हो गई थी। उनके सम्बन्धी ने सोचा कि यदि यहीं पर प्राणांत हो गया तो अन्तिम संस्कार भी करना कठिन हो जायगा। पुलिस को पता लग गया तो बड़ी मुसीबत का का सामना करना होगा। इसलिये उन्हें सरकारी अस्पताल में भरती कराकर वे उनकी स्त्री को साथ ले कर चल दिये। लौट कर देखा तो पण्डित जी चुपचाप बिस्तर पर पड़े थे। उनका नश्वर शरीर संसार को त्याग चुका था। उस समय दिन के दो बजे थे और दिसम्बर सन् १९२० की २१ वीं तारीख थी।

जिस देश के लिये सर्वस्व त्यागा, सारे कष्ट सहे और प्राण तक दे दिये, उस देश के किसी ने यह भी न जाना कि पण्डित गेंदालाल कहाँ विलीन हो गये। भारत की स्वतन्त्रता के इतिहास में आपका नाम आदर के साथ अंकित होगा। आप भारत की निधि और इस प्रान्त के त्यागी, वीरात्मा और उज्ज्वल क्रांतिकारी पुरुष थे।



श्री विष्णु गणेश पिंगले

श्री पिंगले का जन्म पूना के एक पहाड़ी प्रदेश में हुआ था। इनके पिता का नाम श्री गणेश पिंगले था। यह महाराष्ट्र के थे। महाराष्ट्र जाति भी अपनी वीरता के लिए दक्षिण में प्रसिद्ध है। अतीत का इतिहास इनकी वीरता, साहस और चतुरता का साक्षी है। उत्तरीय वीर भारतीयों की भाँति दक्षिण के इस नवयुवक में भी क्रान्ति के भाव उत्पन्न हुए। देश-भक्ति और देश प्रेम किसी जाति की निजी सम्पत्ति नहीं, यह तो सबकी वस्तु है। जो उसकी उपासना करता है वह उसी की हो जाती है।

विष्णु गणेश पिंगले को लोग संक्षेप में वी० जी० पिंगले के नाम से पुकारते थे। विष्णु गणेश पिंगले बचपन से ही बड़े फुर्तीले, तेज प्रकृति के तीक्ष्ण-बुद्धि बालक थे। बचपन में इन्होंने मराठी पढ़ी और उसके साथ-साथ संस्कृत भाषा का भी अभ्यास किया। इनके पिता बड़े धार्मिक प्रकृति के पुरुष थे। उनका प्रभाव इन पर पड़ा, और वे भी धार्मिक-ग्रंथों को बड़ी रुचि के साथ पढ़ा करते थे और धार्मिक कथा-वार्ता में काफी मनोयोग दिया करते थे। इन्होंने बालकपन में ही पूरी गीता कण्ठ कर ली थी। इससे पिंगले की बुद्धि प्रखरता का पता चल सकता है। गीता के अध्ययन का इन पर



श्री विष्णु गणेश-पिंगले

इतना प्रभाव पड़ा कि ये घर बार छोड़ कर साधु बन गये थे। यह नहीं कहा जा सकता था कि पिंगले का सचमुच

वैराग्य उत्पन्न हो गया था, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि सांसारिक बातों में इनका मन न लगता था। साधु होकर पिंगले घर से निकल पड़े। घर से निकल कर कुछ समय तक भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करते रहे। इस बीच में वे बहुत से तीर्थों में गये और तरह-तरह के लोगों से मिले। बुद्धिमान विद्वान् थे ही। भ्रमण से ज्ञानपरिपक्वता आ गई। कुछ समय इसी तरह भ्रमण करके घर लौट आये। कुछ इनके हृदय में इस तरह से जीवन-यापन करने के प्रति घृणा उत्पन्न हुई। इन्होंने अंग्रेजी का अभ्यास करना आरम्भ किया और थोड़े ही समय में उसका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त कर लिया।

मित्रों के सम्पर्क से इन्जिनियरिंग पढ़ने के लिये अमेरिका जाने की इच्छा उत्पन्न हुई। घर वालों के सामने जब यह प्रश्न आया तो उन लोगों ने भी अनुमति दे दी और किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया। पिंगले घर वालों से बिदा लेकर अमेरिका के लिये चल दिए। अमेरिका पहुँच कर शिक्षा प्राप्त करने लगे।

इधर अमेरिका के भारतीयों में विप्लव की आग भड़क रही थी। वहाँ पर भी एक खासा विप्लववादियों का दल बन गया था। वे लोग जगह-जगह संगठन और प्रचार का काम कर रहे थे। पिंगले का विप्लववादियों के साथ सम्बन्ध हो गया। पिंगले का पवित्र हृदय क्षुब्ध हो उठा। उनके हृदय में क्रांति के विचार लहर मारने लगे। उन्होंने इस सम्बन्ध का तत्कालीन साहित्य का अध्ययन किया; देश की परिस्थिति का अध्ययन किया और वे जब भारत की अन्य स्वतन्त्र देशों से तुलना करने लगे। उनमें मानसिक क्षोभ रहने लगा। उन्हें

भारत की परतंत्रता अखरने लगी और जीवन भार मालूम होने लगा। उन्होंने निश्चय किया कि स्वदेश चल कर विप्लव दल का संगठन करना चाहिये और भारत को गुलामी के बन्धन से मुक्त करना चाहिये। वे अमेरिका से चल दिये। भारत में आकर उन्हें घर जाने की चिन्ता हुई उन्हें तो एक मिनट नष्ट करना अच्छा न मालूम होता था। वे सीधे बंगाल पहुँचे। वहाँ बंगाल के विप्लवी दल का पता लगाया। पंजाब के क्रांतिकारियों की परिस्थिति समझाई और दोनों दलों का सम्बन्ध स्थापित किया। वे रासबिहारी से मिले। उस समय उत्तरीय भारत का संचालन-सूत्र रासबिहारी के ही हाथ में था, और उन्हीं के द्वारा समस्त केन्द्रों को आवश्यक सामग्री पहुँचाई जाती थी। पिंगले को पंजाब के लिये बम गोलों की आवश्यकता थी। इसलिये रासबिहारी के दल से उनका सम्बन्ध जोड़ना अनिवार्य था।

शचीन्द्रनाथ सान्याल इधर पंजाब की स्थिति जानने के लिये और वहाँ की दशा का पूर्णरूप से अध्ययन करने के लिये यात्रा कर रहे थे। उस यात्रा में शचीन्द्र का पिंगले के साथ साक्षात् हुआ। पिंगले ने शचीन्द्रनाथ से पंजाब की सहायता करने को कहा—शचीन्द्रनाथ वचन देकर लौट आये, परन्तु निश्चित समय पर किसी के पंजाब से न आने के कारण सहायता न मिल सकी। पिंगले के कारण पंजाब के विप्लवदल में एक प्रकार की जान सी आ गई। रासबिहारी और शचीन्द्रनाथ सान्यास को कुछ-कुछ आशा हो चली थी कि अब इस आंदोलन में कुछ शक्ति है पिंगले के मिलने से शचीन्द्रनाथ को एक हार्दिक प्रसन्नता हुई थी। प्रथम परिचय

में शचीन्द्र बड़े प्रभावित हुये थे। बात-बात में वे गीता के श्लोक बोलते थे। उनका तेजस्वी मुख, उनका समुन्नत और बलिष्ठ गौर शरीर, उनकी विलक्षण तीक्ष्ण बुद्धि उनके साहस और उत्साह का प्रत्यक्ष परिचय दे रहे थे। उनको देखने से प्रतीत होता था कि इनके हाथों से बहुत कुछ काम हो सकेगा।

पिंगले बंगाल से लौट कर दो दिन काशी में ठहरे वहीं यह निश्चय हुआ कि बम गोले तो काफी मिल सकेंगे, पर उनके बनाने में खर्च होता है; इसलिये रुपयों की आवश्यकता है। अतः पिंगले पंजाब जाकर सब हाल पता लगावें। पिंगले पंजाब पहुँचे करतारसिंह पृथ्वीसिंह आदि वहां के प्रमुख कार्य-कर्त्ताओं से मिले और सप्ताह में वहां का सब समाचार जान-कर लौट आये। चलते समय पंजाब के कार्यकर्त्ताओं ने पिंगले से यह कहा था कि जिस तरह भी हो रास बिहारी को आप जरूर लेते आइयेगा। काशी आकर पिंगले ने रास बिहारी से अनुरोध किया कि आपको एक बार पंजाब चलना होगा। रासबिहारी तो पंजाब उस समय न जा सके, किन्तु पिंगले और शचीन्द्र नाथ सान्याल ने पंजाब की यात्रा की। शचीन्द्र पंजाबी बोली नहीं जानते थे किन्तु पिंगले पंजाबी बोली से परिचित थे, क्योंकि अमेरिका में इनका पंजाबियों से बहुत साथ था। इन लोगों ने थोड़े समय वहां ठहर कर पंजाब को संगठित किया।

पिंगले दक्षिणी थे, किन्तु अपनी कार्यक्षमता और साहस के बल पर पंजाब पर अपना नेतृत्व जमाये हुये थे। उस समय पंजाब विप्लव आंदोलन के प्राणस्वरूप तरुण करतारसिंह और

पिंगले ही थे। शचीन्द्र के काशी लौट आने पर और पूरी पंजाब की व्यवस्था समझाने पर रासबिहारी पंजाब गये। पंजाब में २१ फरवरी विप्लव का दिन पहिले से ही निश्चित था। वह धीरे-धीरे समीप आने लगा। लोगों में अपूर्व उत्साह था। उस दिन की बाट बड़ी प्रतीक्षा एवं उत्सुकता से जोही जा रही थी। सारा प्रबन्ध किया जा चुका था। काम बड़े जोरों पर था भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक जोरों की क्रांति की आयोजना हो चुकी थी। परन्तु अदृष्ट को कौन जानता है, कौन जानता है कल क्या हो जायगा ? देशद्रोहियों की काली करतूत से सारा प्रयत्न विफल हुआ। पुलिस के एक भेदियों ने सारा भण्डाफोड़ कर दिया। सबकी आशाओं पर पानी फिर गया गिरफ्तारियों का बाजार गर्म हो गया।

करतारसिंह तो सीमा प्रान्त की ओर चल दिये और रासबिहारी तथा पिंगले बनारस की ओर अपने बचाने की दृष्टि से चल दिए। रास्ते में पिंगले के हृदय में अनेक भावनाएँ उठने लगीं। वे आशावादी से पीछे हटना अपमान समझते थे। जीवन को विपत्तियों की भभकती आग में झोंक देना उनके लिये खेल था। वीर पुरुष यदि स्वयं कार्य में सफल नहीं होते तो दूसरों के लिये तो मार्ग अवश्य परिष्कृत कर जाते हैं। बनारस लौटते समय रासबिहारी के रोकने पर भी वे मेरठ में उतर पड़े और निश्चय किया कि विद्रोह करना चाहिए। मेरठ की छावनी में घुस पड़े और विद्रोह की आग भड़काने लगे।

विश्वासी आदमी को धोखा देना कौन बड़ा काम है ? एक मुसलमान हवलदार जिसने पिंगले को अपना काफी

विश्वास पात्र बना लिया था, पिंगले उसकी प्रत्येक बात का विश्वास करते थे। उसने इस कार्य में सहयोग देने की बहुत आशा दिखाई। विप्लव के लिये खूब उत्साह दिखाया और सहायता देने का वचन दिया पर किसे यह मालूम था कि नारकीय उस वीर को फँसाने की चेष्टा में लगा हुआ है। अस्तु पिंगले उसके कहने में आ गये। अवसर पाकर उसने पिंगले को पकड़ा दिया। जिस समय वे पकड़े गये उस समय उनके पास बड़े भयंकर दस बम थे।

पिंगले पर मुकदमा चला। अदालत से फाँसी की सजा मिली। १६ नवम्बर १६१५ ई० फाँसी का दिन था। पिंगले से पूछा गया—'क्या इच्छा है ?' उत्तर मिला—'दो मिनट प्रार्थना करना चाहता हूँ।' हथकड़ी खुल जाने पर हाथ जोड़कर ईश्वर से प्रार्थना की—'भगवान् आज हम जिस लिये जीवन की बलि चढ़ा रहे हैं, उसकी रक्षा का भार तुम पर है। एक यही इच्छा है कि 'भारत आज स्वतन्त्र हो' यह कहते ही उछल कर फांसी का फन्दा खुद गले में डाल लिया और इस लोक से चल दिये।'

रौलट रिपोर्ट में लिखा था कि पिंगले के पास जो बम मिले थे। वे इतने भयंकर थे कि एक बम आधी छावनी के लिये पर्याप्त था।

रासबिहारी ने अपनी डायरी में पिंगले की वीरता और साहस के बारे में स्मरण करते हुए लिखा था कि—'यदि मैं यह जान पाता कि पिंगले मुझे फिर न मिलेगा तो उसके लाख कहने पर भी उसे मेरठ न जाने देता। वह बड़ा बहादुर था और सदैव एक आज्ञाकारी सिपाही की भाँति कार्य करता था।

□□